आधुनिक कवि

१७



श्यामनारायण पाण्डेय


हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग
हिन्दी

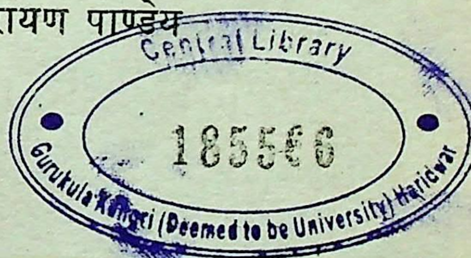
हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग

आधुनिक कवि : १७

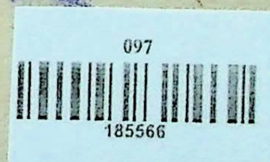
देव पुरस्कार-ग्रन्थावली

आधुनिक कवि
१७

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय







शक १८९८ : सन् १९७८ ई०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक
जगदीश स्वरूप
आदाता : हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

प्रथम संस्करण : ११०० प्रतियाँ
प्रकाशन वर्ष : १९७८
मूल्य : दस रुपए

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रकाशकीय

ऐतिहासिक ओरछा राज्य अपनी हिन्दी-निष्ठा और साहित्य-सर्जन-संवर्द्धन के लिए ख्यातिप्राप्त था। भारत गणराज्य में देशी रियासतों के विलय के पूर्व अंतिम ओरछेश सवाई महेन्द्र महाराज वीरसिंह देव ने अपनी वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् संस्था के माध्यम से संवत् १९९४ वि० में एक हजार रुपए की निधि देव पुरस्कार ग्रंथावली प्रकाशित करने के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन को प्रदान की थी।

सम्मेलन ने इस ग्रंथावली के अंतर्गत हिन्दी के प्रतिनिधि आधुनिक कवियों के काव्य-संग्रह प्रकाशित करने की योजना बनाकर 'आधुनिक कवि माला' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। इस कवि माला की स्थापना के संकल्प की विशेषता यह है कि कवि अपनी कविताओं का चयन अपनी रुचि के अनुसार करके स्वयं ही उन पर सव्याख्या अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। प्रत्येक काव्य-संग्रह में कवि की हस्तलिपि का नमूना और उसकी प्रतिच्छवि का रेखाचित्र भी रहता है।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह उक्त ग्रंथमाला का सत्रहवाँ पुष्प है, जिसमें हिन्दी के प्रतिनिधि वीर रस के महाकवि श्री श्यामनारायण पाण्डेय की कविताएँ उन्हीं के द्वारा संग्रहीत हुई हैं और कवि ने स्वयं भूमिका के रूप में उनकी व्याख्या प्रस्तुत की है।

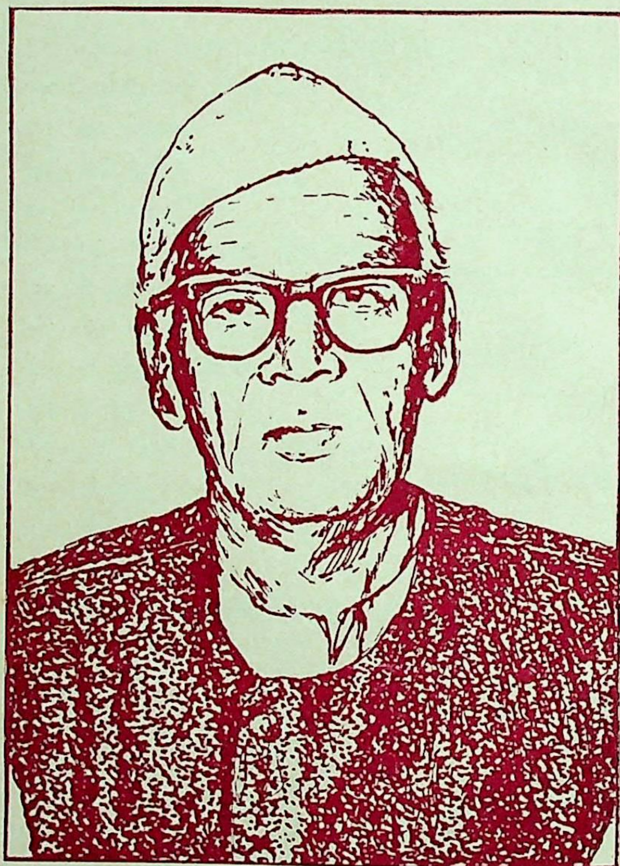
श्री श्यामनारायण पाण्डेय आधुनिक हिन्दी वीरकाव्य के प्रणेताओं में अग्रणी हैं। उनकी ओजस्वी वाणी और लेखनी से हिन्दी जगत् सुपरिचित है। 'जौहर' और 'हल्दीघाटी' द्वारा पाण्डेय जी को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई है वह उल्लेखनीय है। श्री श्यामनारायण पाण्डेय स्वाधीनचेता राष्ट्रीय कवि के रूप में सर्वमान्य हैं। राष्ट्रीय स्वातंत्र्य एवं क्रांति का पाण्डेय जी

ने अपने कवि-स्वर से आवाहन किया है। उनकी ओज एवं प्रवाहमयी कविताएँ सहस्र-सहस्र पाठकों एवं श्रोताओं को सदैव ही उदात्त राष्ट्रप्रेम का पाठ पढ़ाती रही हैं। ऐसे वीर-रससिद्ध कवि की कविताओं का यह प्रतिनिधि संकलन निश्चय ही उनके काव्य-प्रेमियों और अध्येताओं को न केवल संतुष्ट करेगा वरन् कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व के पारखी विद्वानों को इस संग्रह की भूमिका से पाण्डेय जी के उदात्त दृष्टिकोण को समझने में सुविधा होगी।

स्वाधीनता दिवस
१५ अगस्त १९७८

—जगदीश स्वरूप
आदाता

अनुक्रम



लेखक

परशुराम

पावन त्रिपुण्ड से दीप्त भाल
संस्कारित गात से किरणजाल
तप प्रखर तेज से दीप्तिमान
है अन्तरिक्ष का अन्तराल
(छूट) - भूली कवि के हस्तक्षेप से
घन जटाजूट में बिल्वपत्र
शंकर के पूजन का प्रसाद
रुद्राक्ष कण्ठ में, कर कुठार
ज्यों शान्ति क्रान्ति की युगलधार
यज्ञोपवीत के धागों में, तप
ब्रह्मचर्य के सामगान
गतिशील पादुका की ध्वनि से
रजकण पवन कम्पायमान।
भस्मांकित वल्कल उत्तरीय
बाघम्बर वेष्ठित कटि प्रदेश।
गौरव सा जलता गौरवर्ण
कर्षक आकर्षक रूप वेश।

परशुराम कर्म का विज्ञापन
मृगचर्म कक्षा में विद्यमान
कन्धे पे उत्तम महाचाप
शिव की प्रसन्नता का निशान

आँखों में बहती अग्नि ज्वरित
मुख तेज वर्तुलाकार हार
जिह्वा पर ऋग्वेद शिव जोग
ओंकारेश भयंकर परशु धार

हे ब्राह्मणत्व के आकार राम
हे ज्ञानकर्म अवतार राम
वर्णाश्रम के आधार राम
हे युग के जय जयकार राम

अनन्त चतुर्दशी
२०३३

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

अपनी बात

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की साहित्य समिति का आग्रह है कि मैं अपनी प्रतिनिधि कविताओं का एक संकलन प्रस्तुत करूँ। आधुनिक कवि-माला के दुर्ग के भीतर प्रवेश पाने का यह संकलन प्रमाण-पत्र होगा। चिरकाल बाद ही सही, सम्मेलन ने मुझे याद तो किया, अपने स्वतंत्र एवं मौलिक काव्यों के रहस्योद्घाटन का अवसर तो दिया। इसलिए मैं हृदय से उसका आभार मानकर ही सन्तुष्ट नहीं हूँ, अपितु आज के युग में उसके साहस की सराहना भी करता हूँ। क्यों? इसलिए कि मैं आर्य-संस्कृति का पुजारी तथा धर्म की आधारशिला पर भारतीय परम्परा की विकासोन्मुख सभ्यता का पक्षधर हूँ। मैं देश, जाति और सद्धर्म के अभ्युदय की पताका उड़ाता फिरता हूँ।

इस वैज्ञानिक और धर्मनिरपेक्ष देश में आचार-विचार, रहन-सहन, संस्कृति और सभ्यता किस अज्ञात भविष्य की ओर बही जा रही है, आगे इसका क्या परिणाम होगा, सदा से ऋत और सत्य के प्रशस्त-पथ पर चलने वाला यह धार्मिक देश आधुनिकता की आँधी में उड़ता हुआ किस धरातल पर जा खड़ा होगा, अनैतिकता, अनाचार और अविश्वास के घना-न्धकार में कब तक भटकता रहेगा, विषैले धुएँ से भरे दमघोंटू वातावरण में साँस लेने वाले किसी का कब तक भला मनाते रहेंगे। झूठ वंचना और अधर्म की काँपती नींव पर सामाजिक व्यवस्था का खड़ा राजप्रासाद कब तक टिका रह सकेगा? इन जलते हुए अनिवार्य प्रश्नों के उत्तर देने से नहीं चूकता, समाज की उपेक्षा कर स्वपोषण को नेतृत्व नहीं मानता, स्व पर विवेकहीन केवल भाषण के बल पर मेरे प्यारे देश का कोई कर्णधार

नहीं हो सकता, राष्ट्रभाषा की समस्या के सामने प्रश्न-चिह्न लगाकर कँटीले तार में उलझाने वाले देश के हमदर्द नहीं हो सकते।

जिस धरती का रस पिये जिए,
उस धरती को बदनाम करे।
बाहर भारत का भक्त बने,
भीतर कैंची का काम करे।

ऐसे रँगीले एवं गूढ़ नीति के कारण सामाजिक शक्ति से सम्पन्न महापुरुष हर जगह विद्यमान हैं, जो अपने तथा अपनों के लिये ही विशेष चिन्तित हैं। इसी से कहता हूँ कि सम्मेलन का निर्णय उसके निष्पक्ष और निर्भीक प्रशासन का उद्घोषक है।

पिता जैसे अपनी सभी सन्तानों से एक-सा स्नेह रखता है, वैसे ही कोई भी कवि अपनी किसी भी रचना को अवर नहीं समझता। प्रवन्ध-काव्यकार के लिए प्रतिनिधि कविताओं का संकलन तो और भी कठिन है, क्योंकि किसी सर्ग के छन्द अपने कथ्य को समेटे हुए समान आह्लादकारी हों, यह संभव नहीं, कुछ-न-कुछ तो उतार-चढ़ाव रहेगा ही। साथ ही पृष्ठों की सीमा भी निर्धारित है, जिसको लाँघना छन्दों के वश की बात नहीं। ऐसी स्थिति में मुझे अपनी प्रतिनिधि कविताओं का संकलन प्रस्तुत करना है। मैं प्रयत्न करूँगा कि मेरा संकलन सही और दोषरहित उतरे। प्रभु मुझे शक्ति दे।

अपने सहृदय पाठकों से एक और निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ। विभिन्न पुस्तकों से ली गयी, भिन्न-भिन्न कविताओं में भले ही मेल न हो, भले ही एकरसता न हो, लेकिन उनकी रसानुभूति में कोई दोष नहीं है।

सांस्कृतिक जीवन जीने में अग्रणी सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल में संवत् १९६४ सावन कृष्ण पंचमी को जन्म, घर में नित्य चन्दन-धूप-दीप और नैवेद्य से शालिग्राम भगवान् की पूजा, समय-समय से पंचदेवों का आवाहन-

पूजन, विधवा माँ के गले में तुलसी की माला, आँखों में सहज स्नेह, रोम-रोम में राम-भक्ति की सुगन्ध, चाचा के गले में रुद्राक्ष, चन्दन-चर्चित भव्य भाल पर सदाचार के तेज की दीप्त वाणी में हरि-कथा की कल्लोलिनी, बाबा की बूढ़ी आँखों से रामायण पाठ करते हुए श्वेत घनी दाढ़ी पर लुढ़कते हुए गोल-गोल आँसू तथा गोमुखी के भीतर निरन्तर माला फेरते हुए परम पूज्य पौहारी जी का शिष्यत्व, सबने मिलकर मेरी रक्त-वाहिनी नसों में आस्तिकता का अमृत भर दिया। भक्ति-भावना की जाह्नवी में मेरा अबोध मन डूब गया और प्राणों के भीतर मन्द-मन्द जलतरंग बजने लगा।

बहुत दिनों तक अर्द्धविक्षिप्त की तरह भजनानन्दी साधुओं की खोज में भटकता फिरा। सन्तों की सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती। उनके आशीर्वाद का कल्पतरु बारहों मास फूला-फला करता है, उनकी सत्संगति का लाभ मेरे जीवन का सोमरस बन गया था। उनसे मुझे बहुत-कुछ मिला, लेकिन जिस आत्मदेव की झाँकी के लिए तरस रहा था, उसकी एक झलक भी नहीं मिली, उसकी एक मद्धिम-सी किरण का आभास तक नहीं मिला, तड़पता ही रह गया। जो मिला, उन सबको जीवन में उतार भी नहीं सका, जितना भी मेरे पात्र में समा सका, उतने ही से रहन-सहन, आचरण-व्यवहार बनाने में उम्र ढलने लगी।

सायं-प्रातः स्नान, सन्ध्या, तिलक, माला, भजन-कीर्तन, मन्दिर, पुजारी तथा पर्वों पर भक्तों की भारी भीड़ से स्पष्ट है कि धर्म के प्रति निष्ठा की कमी नहीं है। धर्म के नाम पर कष्ट झेलने वाले बहुत हैं, अर्थ से धर्म खरीद कर यश कमाने वाले गली-गली हैं, लेकिन धर्म है क्या वस्तु, उसका जीवन से कितना घना सम्बन्ध है, ऐसी जिज्ञासा की खुजली किसी-किसी पुण्यात्मा को ही तंग करती है। प्रायः लोग अन्धविश्वासी, परानु-करणशील तथा धर्मभीरु हैं। नित्य की दिनचर्य्या में कोई बाधा न पड़े, धर्म मानकर स्वेच्छया जो कर्म करते हैं, उसके विपरीत कोई दूसरा आचरण न करना पड़े, चरित्र का विकास भले न हो पर धर्म की माला जपते रहें।

॥ तीन ॥

तन ध्यानमग्न होने का स्वाँग करे और मन बाजार के चौक में मटरगस्ती करे, ऐसे धार्मिक लाखों हैं, करोड़ों हैं। इस विडम्बना से दूर रहने की इच्छा रखते हुए भी सच्चे गुरु के अभाव में उस धर्मलव से मैं भी अछूता नहीं रह सका। मेरे भी पाँव उधर ही बढ़ने लगे जिधर मेरे पूर्वज अपने चरण-चिह्न छोड़ गये थे। सरलता से सदाचारी जीवन बिताने के लिए वह मार्ग मुझे बहुत अच्छा लगा, लेकिन यह क्या! कुछ ही दिनों के बाद मेरी धर्म-जिज्ञासा और ज्ञान की भूख बड़ी तेजी से बढ़ने लगी, योग-साधना की इच्छा तो सहस्र फन काढ़कर नागिन की तरह फुफकारने लगी। बेचैनी इतनी बढ़ी कि घर से निकल भागने के मार्ग में यदि माँ के आँसुओं की वैतरणी नहीं बह जाती तो आज दर-दर का भिखारी ही होता या ज्ञानी, यह कहा नहीं जा सकता।

अज्ञान स्वतः हेय है और ज्ञान सर्वथा उपादेय। ज्ञान से ही आत्मदेव के दर्शन का लाभ उठाया जा सकता है। आत्मजयी होना ही जीवन का चरम लक्ष्य है, परम पुरुषार्थ है। वह बिना धर्माचरण के संभव नहीं, इसलिए सद्धर्म का सेवन जीवन का अमृत है। धर्मचर्चा से तो सारा वाङ्मय भरा पड़ा है, पदे-पदे धर्म की दुहाई दी गई है, लेकिन उसके स्वरूप की गहराई पर तात्त्विक विचार तथा उसकी कोई सार्वभौम अविकार परिभाषा अब तक नहीं उपलब्ध हो सकी, जिसके सहारे मैं अपने को खोज सकूँ, 'मैं-तुम' के प्रपंच का भेद पा सकूँ। कुछ ऐसा लगता है कि अनेक चिर विश्वासों के परस्पर संघर्ष ने सच्चे धर्म पर परदा डाल रखा है, हर धर्म एक-दूसरे की भर्त्सना करने में ही अपना गौरव समझता है। प्रायः धर्मान्धता शान्त विचार करने नहीं देती, बल्कि वितण्डावाद में उलझकर अधर्म की दलदल में फँस जाती है। वास्तव में सभी धर्म एक-दूसरे के पूरक हैं, सब में सत्यांश है, सबकी इमारत सत्य की मजबूत नींव पर ही उठी है। पथ-पाथेय भले ही भिन्न हों, लेकिन सभी पन्थों का मिलन-बिन्दु एक ही है—

'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'

धर्म का रहस्य आवृत है। मेरी बुद्धि साधना में इतनी पवित्र और परिष्कृत नहीं हो सकी कि वह गुहा में प्रवेश करके धर्म का साक्षात्कार कर सके। बड़े-बड़े विद्यानिधि तपस्वी जिस प्रकाश की छाया तक नहीं छू सके, उसे आत्मसात् करने का मेरा दुःसाहस कितना हास्यास्पद था। आश्चर्य तो यह है कि मेरी कर्महीन जिज्ञासा आज भी उतनी ही जवान है, जो नहीं जाना जा सका, जो नहीं प्राप्त हो सका, उसके प्रति क्षोभ एवं आक्रोश छन्द बन-बन कर उछलने लगे। सांस्कृतिक जनता की वाहवाही ने उन्हें बढ़ावा दिया, कवि बनने की रंगीन लालसा की उम्र बढ़ने लगी। मेरी धार्मिक एवं दार्शनिक कविताओं का मूल-स्रोत अव्यक्त को व्यक्त न कर सकने की प्रतिक्रिया है, निरंजन की खोज है।

इस तरह की धर्मचर्य्या में मैंने जीवन के पचीस-छब्बीस वर्ष बिता दिये। अब रक्त में उष्णता, गुनगुनाहट में संगीत, वस्तु-सौन्दर्य में आकर्षण, रूप, रस, गन्ध के प्रति ललक, हवा-पानी में भीनी-भीनी सुगन्ध, सब-कुछ समेट लेने की आकांक्षा तथा बिना बिजली के मारे शरीर में विद्युत्-संचरण—ये सभी उद्दाम-यौवन की मध्याह्न-वेला सूचित करने लगे, साथ ही, अपने तथा दूसरों के लिए कुछ कर जाने का निमंत्रण भी देने लगे। कुछ काम-काज करने के लिए बड़े-बूढ़ों की उपदेशभरी झिड़की तो मिलती थी, लेकिन अधूरी विद्या तथा असहाय होने के कारण मेरे लिए सभी दर-वाजे बन्द थे, अपने तथा माँ के भरण-पोषण का भार झेलना तो चाहता था पर झेल न सका, मेरे स्वाभिमान ने भी मुझे कहीं चाकरी नहीं करने दी।

सन् १९३० और १९४७ के बीच देश का वातावरण गरम था। पराधीनता की अर्गला तोड़ फेंकने के लिए महात्मा गाँधी के शान्त एवं दृढ़ नेतृत्व में बच्चे, बूढ़े, जवान सभी ब्रिटिश सत्ता से जूझ रहे थे, धधकती आग में उड़ते हुए पत्ते की तरह। स्वतंत्रता कहीं दीखती नहीं थी, पर सभी की कल्पनाओं पर छायी हुई थी। जनता को सत्य और अहिंसा के मंगल-मय परिणाम पर अटूट विश्वास था। उस भयंकर संघर्ष में गाँव-के-गाँव

फूँक दिये गये। जगह-जगह जलियानवाला हत्याकाण्ड उपस्थित करने पर भी गाँधी जी ने अपने शस्त्र नहीं बदले, लेकिन क्रान्तिकारियों ने हाथ-जोड़ नीति की उपेक्षा कर हत्यारों को बीन-बीन कर भूनना आरम्भ कर दिया। इससे गोरों में एक हल्की-सी दहशत तो समायी, लेकिन गोलियों की वर्षा कम नहीं हुई।

इस ऐतिहासिक तथ्य पर भी पर्दा नहीं डाला जा सकता कि कांग्रेस के नाम पर अधिक हिन्दू ही पीसे गये, भन्नाती हुई गोलियाँ केवल भगवान् राम और कृष्ण के नामलेवों के सीनों में घुसीं। गोरों की रक्ततृषित संगीनों ने राणाप्रताप और शिवा की संतानों के रक्त पिये। क्रान्ति की आग आजाद, यतीन्द्र, बटुकेश्वर और ऊधम सिंह के अनुयायियों के लाल-लाल शोणित के फौहारों से बुझने लगी। देश की हुंकृति भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव के नौनिहालों के चीत्कारों में विलीन होने लगी। कांग्रेस का जलता हुआ किन्तु अजेय सिंहासन ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में लहराते रक्त-सिन्धु के बीच डूबने लगा; चर्खा-चित्रित राष्ट्रीय तिरंगा झुका तो नहीं, लेकिन बलिदानी सपूतों के शोणित से लथपथ हो गया।

महात्मा गाँधी भगवान् राम के भक्त युगावतार महात्मा तो थे ही, संवेदनशील भी उनके जैसा दूसरा नहीं था। लेकिन यह बात समझ में नहीं आती कि राष्ट्रहित के लिये काल को चुनौती देने वाले वीरभद्र के समान तेजस्वी सुभाषचन्द्र बोस से उन्हें क्यों चिढ़ थी और मुस्लिम लीग के बन्द दरवाजे के सामने हाथ जोड़कर खड़े रहने का क्या तुक था? उनके लाख प्रयत्न करने पर भी लीग ने कांग्रेस का साथ नहीं दिया, बल्कि पग-पग पर रोड़े अटकाती रही। परस्पर विरोधी भावों के संघर्ष तथा तू-तू मैं-मैं की रगड़ से साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी।

गौतम बुद्ध और महावीर के पद-चिह्नों पर चलने वाले हिन्दू एक-दूसरे को चकित आँखों से देख ही रहे थे, तब तक पाकिस्तान की नींव निहत्थों की निर्मम हत्या, बलात् धर्म-परिवर्तन, असहाय अबलाओं के साथ बलात्कार तथा जलते हुए नगरों और गाँवों की भयंकर लपटों के

सहारे उठने लगी। गर्ग, गौतम, कणाद और कपिल की जन्म धरती रक्त से नहाने लगी, बड़े-बड़े लोकरक्षक तलवार के घाट उतार दिये गये, हिन्दू-मुस्लिम का नारा बुलन्द करने वाले कोटरों में घुस गये। हिन्दुओं की सहनशक्ति जब क्षीण होने लगती, आकाश में जब वज्रवर्षी लाल-लाल बादल मँडराने लगते, भयंकर तूफान उठने वाला होता तो गाँधीजी अनशन पर बैठ जाते, मरने की धमकी देने लगते। हिन्दुओं के कण्ठ में जय बजरंग बली का हुंकार गड़गड़ाकर रह जाता और उनका सारा जोश आँखों से बहने लगता। यह था धर्मभीरु हिन्दू जाति पर महात्मा शब्द का प्रभाव। यवन बर्बरों और हिंसक गोरों के कराल जबड़ों के बीच पिसी जा रही थी हिन्दू जाति, उसकी विद्या और संस्कृति। अकेले आर्य-देवता महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के लुढ़कते आँसू क्या करते। दोनों को दूध-पानी की तरह मिलाकर रखने की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। देश की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति कितनी दर्दनाक थी, कितनी शर्मनाक। उस संघर्ष काल में मुझे महाराणा प्रताप के वर्चस्वी व्यक्तित्त्व की याद आने लगी, हिनहिनाते हुए परम प्रतापी चेतक घोड़े की टाप सुनाई पड़ने लगी और ताण्डव करते हुए उनके भयंकर भाले के तेज की भभक से आँखें चौंधियाने लगीं। समाधि से महाराणा को जगाने की लालसा तीव्र हो उठी। अक्षरों में महाराणा प्रताप की तस्वीर बनाने के पहले उस समय के कवियों और उनकी कविताओं पर एक हल्की आलोचनात्मक दृष्टि डाली, इसलिए कि जो कुछ मैं प्रस्तुत करूँ उसमें आर्य संस्कृति की स्वर-प्रतिष्ठा तो रहे ही, साथ ही अनेक वादों के अहं से भी दूर रहूँ और साहित्य को धोखा भी न दे सकूँ।

हिन्दी कविता में उलझन भरी राजनीति काम कर रही थी, संस्कार-हीन स्वेच्छाचारी कवि वैदेशिक चाल-चलन, रहन-सहन की ओर आकर्षित थे, स्वत्व का अभिमान क्षीण हो चला था, अपनी तीव्र वासना को मधुर शब्दों के जाल में फँसाकर ललित कण्ठ से गाने का शौक था। छायावादी कवि सराहे जा रहे थे, वे मूक वेदना के नीरव हाहाकार में अव्यक्त को

व्यक्त करने के गीत आलाप रहे थे, कुछ अहम्मन्य आलोचक पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए उनके गीतों को ऋचा का सम्मान देने में भी नहीं हिचकते थे। न मालूम क्यों उन्हें अन्य सरस रचनाएँ आकर्षित नहीं कर पाती थीं, लेकिन जन-मानस पर उनकी कोई छाप नहीं थी। जो कविता अपने प्रसाद से हृदय को भाव-विह्वल न बना दे, उसे कविता कहना वाणी का अपमान है। बुद्धि-विलासिता कविता नहीं है। आज भी छायावादी कविताएँ कुछ उपाधिग्रस्त पण्डितों के बीच ही सराही जा रही हैं। क्योंकि वे भारतीयता से सम्बन्ध-विच्छेद कर पश्चिमी जीवन दर्शन से संपृक्त हैं।

कवि सम्मेलनों में निरी तुकबन्दियों से हँसाने वाले विचित्र नामधारी कवियों की पूछ थी, रूसी क्रान्ति से प्रभावित प्रगतिशील कवि कहीं-कहीं अँधेरे में उल्का की तरह चमक जाते किन्तु प्रभावहीन, फिर भी हवा के रुख पर एक विषैला दंश मार ही देते। साथ ही उन युवती कवयित्रियों का भी रंग था जो स्त्री-सुलभ अपना शील-संकोच घर के किसी कोने में रखकर रूप और कण्ठ के बल पर लोक-कल्याण के लिये निकल पड़ी थीं। कुछ तरुण कवि अपने सुरीले कण्ठ और सरस गीत के कारण बहुचर्चित हो चुके थे। सर्वत्र प्राचीनता की अवहेलना और नवीनता की स्वेच्छाचारिता की आँधी बह रही थी। प्रयोगवाद का अभी शैशव-काल था।

दो-चार लोग जो रीतिशास्त्र के अनुसार लिख-पढ़ रहे थे, उन पर फबतियाँ कसी जा रही थीं, भारतीय संस्कृति और उसके रक्षकों की उपेक्षा खतरनाक थी।

संस्कृति राष्ट्र की साँस है, उसके बिना राष्ट्र का जीवन निष्पंद है, अर्थहीन है। जो विकृतियों का संशोधन करके संस्कृति की रक्षा करता है वही जनदेवता है; उसी के चरणों पर श्रद्धा के सुमन चढ़ते हैं। जिसको अपनी संस्कृति से प्यार नहीं, स्वधर्म में श्रद्धा नहीं, अपनी जाति पर गर्व नहीं और राष्ट्र के प्रति निष्ठा नहीं, उसे देश का सरदर्द न कहा जाय तो और क्या कहा जाय।

कविता में कवि का संस्कार बोलता है। संस्कृति, संस्कार की जननी

है और सभ्यता के विकास की सीमान्तिक रेखा। जो जिस संस्कृति में पलता है उसी में वह सही बोल सकता है, लिख सकता है अन्यथा उसके बोलने-लिखने का कोई अर्थ नहीं है। यदि दूसरी संस्कृति में बोलने का दुःसाहस करेगा तो गलत बोलेगा। इसीलिए मेरे काव्यों की शोभा बढ़ाने वाले भगवान् राम, परशुराम, बजरंग बली हनुमान, वशिष्ठ, महाराणा प्रताप और शिवा जी जैसे धर्मनिष्ठ एवं धीरोदात्त अवतारी पुरुष हुए।

प्रभु-शक्ति से प्रेरित होकर अध्ययन-काल में ही मैं अपने यौवन की सारी उष्णता, 'हल्दीघाटी' में भरने लगा। सात वर्षों के बाद, १९३९ में, वह जनता की आकांक्षा की पूर्ति और तरुणों की स्फूर्ति बनकर प्रकट हुयी। छपते ही अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत होकर कण्ठ-कण्ठ में गूँजने लगी। ऊपर, छलकते छन्दों में वीरता की गर्जना और भीतर, प्रखर राष्ट्रीयता का हुंकार। हल्दीघाटी ऐतिहासिक गौरव की प्रकाशिका तथा अपने समय के अनेक संघर्षों से प्रभावित आर्य संस्कृति की उपासिका है। हल्दीघाटी स्वातन्त्र्य-संग्राम और सर्वस्व बलिदान की कहानी का नाम है। वह स्वाभिमानी वीरों का तीर्थ है। उसकी पीली-पीली मिट्टी का भस्म मस्तक का चन्दन है। उसके एक-एक पत्थर में भगवान् भूतनाथ की प्रतिष्ठा है। क्यों ? इसलिए कि कठिन-से-कठिन परिस्थितियों से लड़ते हुए सत्य, शौर्य, त्याग और बलिदान के देवता महाराणाप्रताप का प्रचण्ड व्यक्तित्त्व सूर्य-चन्द्र की किरणों में तो चमकता ही है, मेरी 'हल्दीघाटी' के छन्द-छन्द में भी गरजता है। मुझे पूरा विश्वास है कि 'हल्टीघाटी' युग-युग तक भारतीयों को बहादुरी का पाठ पढ़ाती रहेगी, स्वाधीनचेता स्वाभिमानी वीरों के हुंकार में शक्ति भरती रहेगी और राष्ट्रीय संकट के समय देश के पौरुष को जगाती रहेगी, ललकारती रहेगी।

'जौहर' मेरा दूसरा महाकाव्य है, जिसमें महारानी पद्मिनी के पावन सतीत्त्व की गौरव-गाथा है। सतीत्त्व के तेज के आगे धर्मराज को भी झुकना पड़ा है; परम सती वेदवती के वर्चस्व की महिमा का बखान देवता सदा करते रहेंगे।

जब नारी कुल-धर्म, कुल-परम्परा और अपनी संस्कृति से हटकर स्वेच्छाचारिणी हो जाती है तब उसको गिरते देर नहीं लगती। जब आधुनिका बनने के लोभ में समाज के समक्ष सौन्दर्य-प्रदर्शन को ही बड़प्पन समझने लगती है, तब धीरे-धीरे वासना के विष में आकण्ठ डूबकर लोक-मर्यादा और राष्ट्र-प्रतिष्ठा को धूल में मिला देती है। जब नारी दोनों कुलों के सम्मान को ताक पर रखकर पर पुरुष से नेह लगाती है तब अपने घर में तो आग लगाती ही है, समाज के मुँह पर भी कालिख पोत देती है।

स्त्री जाति का सौन्दर्य सोने-चाँदी, हीरे-मोती के गहनों और पारदर्शी कपड़ों से वन्दनीय नहीं होता, वह तो सतीत्त्व के पवित्र तेज से अभिनन्दनीय होता है।

जिस स्त्री में सदाचार का बल नहीं है, पति के चरणों में श्रद्धा नहीं है तथा अपने मधुर बोल और मृदुल व्यवहार से क्रूर-से-क्रूर हिंसक को साधु बनाने की कला नहीं है, वह गृहिणी बनने की अधिकारिणी नहीं है और न उसमें परिवार को सुखी तथा नियंत्रित बनाने की प्रतिभा ही है। जो परिवार नहीं सँभाल सकती, वह देश की बागडोर कैसे सँभाल सकेगी। जब नारी लक्ष्मी बनती है तब अपने तेज से घर में नये स्वर्ग की रचना करती है और जब काली बनती है तब हिंस्र-जन्तु की तरह जन-जन का रक्त चूसकर नग्न नृत्य करती है, निःशंक और निर्लज्ज। आज की नारियाँ धर्म संस्कृति को भुलाकर ऐसे मार्ग पर चल रही हैं जो चलने में सुख तो मालूम होता है लेकिन उस पथ पर चलने से प्रायः हिंसक-कामुकों की शिकार बन जाती हैं, आये दिन बलात्कार और हत्या के समाचार छपते रहते हैं। जिस देश में भ्रूण-हत्या जायज हो, कन्याओं को गायिका बनाकर नचाया जा रहा हो, अश्लील-से-अश्लील फिल्म पर कोई रोक नहीं हो, वह देश कहाँ जाकर गिरेगा इसको राम ही जानें।

सृष्टि का दूसरा नाम ही नारी है। यदि नारी परम पावन है तो उसकी सन्तान भी पवित्र होगी, समाज पवित्र होगा, वंश की मर्यादा बढ़ेगी

और साथ ही देश का गौरव भी जीवित रहेगा। इसीलिए मैंने कीर्त्ति की तरह पवित्र, सीता-सावित्री की तरह पतिव्रता और दुर्गा की तरह वीरांगना महारानी पद्मिनी के चरित्र को अक्षरों में बाँधने का प्रयत्न किया है ताकि देश की भटकती हुई नारियाँ पद्मिनी को समझें, उसकी पवित्रता अपने जीवन में उतारें और उसके शौर्य-साहस को नस-नस में भर लें। अन्य देशों के लिए भारतीय परिवार की पवित्रता उदाहरण बन जाय।

पट में तन तन में नव यौवन, नवयौवन में छविमाला हो,
छविमाला के भीतर जलती पावन सतीत्व की ज्वाला हो।

तीसरी कृति 'शिवा जी' महाकाव्य है। छत्रपति शिवाजी उज्ज्वल-चरित्र के धनी, नीति-कुशल, जन-पारखी, गुरु-माता-पिता के भक्त, हर धर्म के प्रति निष्ठावान्, परम सावधान और राष्ट्र-निर्माता थे। उनके साहसिक जीवन की कथाएँ जिह्वा-जिह्वा पर नाचती हैं, मन-मन्दिर में देवता की तरह पूजी जाती हैं। जो शून्य से नयी सृष्टि का निर्माण कर सकता है, अपनी शक्ति-युक्ति से वड़े-वड़े वर्बर सम्राटों को धराशायी कर सकता है, जो महाकवियों की प्रतिभा का विषय बन सकता है और जिसके दर्शन-स्तवन के लिए आत्मदर्शी महात्मा भी रायगढ़ का चक्कर लगाया करते थे, उस महान् चमत्कारी राष्ट्रपुरुष शिवाजी के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को उजागर करना कितना श्रेयस्कर होगा, इस कल्पना से प्रभावित होकर राष्ट्रहित के लिए मैंने 'शिवाजी' महाकाव्य की रचना करके धर्म, संस्कृति और वीरत्व की अर्चना की है।

भारतीय राष्ट्र के जागरूक प्रहरी छत्रपति शिवा जी परम संयमी, धर्म-कर्म-निष्ठ, साधुसेवी और चरित्रवान् थे। वह आँधियों में प्रचण्ड सूर्य की तरह दीप्तिमान् थे। मौलाना अहमद की अनिन्द्य सुन्दरी पुत्रवधू गौहरबानू को माता का सम्मान देकर उन्होंने अपने निष्कलंक चरित्र का परिचय दिया, अपने बाहुबल से एक नये राष्ट्र को जन्म देकर राष्ट्रीय मन्दिर के शिखर पर अपनी कीर्ति का कलश चढ़ा दिया और फहरा दिया फरेरा आत्म-विश्वास का। सदियों की मानसिक दासता की जड़ हिलाकर

जन-जन में पौरुष, पराक्रम और विजेता की सारी कला भर दी। विद्यु-च्चमक जैसी तीव्रता से शत्रु पर आक्रमण कर विजय प्राप्त करना बायें हाथ का खेल हो गया। शिवा जी ने कभी पराजय का मुँह नहीं देखा, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

आज देश का जीवन स्वत्व के विस्मरण से अस्त-व्यस्त है, धर्म और संस्कृति उपेक्षित है, परस्पर ईर्ष्या-द्वेष-असूया और कलह का ज्वार है, सीमाओं पर शत्रु की गर्जना है, बड़े-बड़े नीतिविशारद मेधावी व्यक्तियों की बुद्धि मारी गयी है, सभ्य परिधान में देशद्रोही, लोगों को पथभ्रष्ट बनाने में संलग्न हैं।

उच्च पदस्थ अधिकारी चारित्र्य को हेय समझकर किसी भी मार्ग से धन-प्रतिष्ठा और उपाधि प्राप्त करने को ही जीवन का चरम लक्ष्य समझ बैठे हैं, लोकजीवन परानुकरणशीलता और अनुशासनहीनता के कारण उच्छृंखल हो गया है।

मैं लिखते समय से ही आश्वस्त हूँ कि 'शिवा जी' महाकाव्य सभी वर्गों का मार्ग-दर्शन करेगा; स्वदेश, स्वधर्म और अपनी संस्कृति के प्रति आस्था बढ़ेगी, भारतीय कहलाने में संकोच नहीं होगा और अपनी भाषा गौरवान्वित होगी। लोग सच्चरित्र, अनुशासित, साहसी, नीति-निपुण, विवेकशील, संगठित और विजयोन्मुख होकर भारतीय राष्ट्र-जीवन की प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे।

मेरी पुस्तकें 'आरती', 'रूपान्तर', 'तुमुल', 'जय हनुमान', 'वालि वध' और 'वशिष्ठ' आदि भी समाज-कल्याण की विविध भावनाओं से उद्भासित हैं। वे सबसे भिन्न हैं, परमुखापेक्षी नहीं हैं और न किसी वाद की मोहनी से मुग्ध ही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें धर्म, संस्कृति, वीरत्व और राष्ट्रीयता का स्वर है, उसी की जयजयकार है।

शमिति

द्रुमग्राम, आजमगढ़ —श्यामनारायण पाण्डेय
२३-८-७६

तुमुल

अलख वही है वही महान्
जिसने नभ को नील बनाया
उस पर तारों को चमकाया
जिसने रवि में रूप दिखाया
जिसने सोया चाँद जगाया
वही सिद्धि है, वही साध्य है, वही साधना का वरदान !

पेड़ों में हरियाली जिसकी
ऊषा में है लाली जिसकी
निशि, अलकावलि काली जिसकी
आसमान है थाली जिसकी
वही भक्ति है, समाराधना, वही भावना का भगवान् !

पावक बन, जलता रहता जो
मारुत बन, चलता रहता जो
सागर बन, बहता रहता जो
क्षिति पर सब सहता रहता जो
वही एक रस, एक रूप है, जड़ चेतन का वही निदान !

अधर अधर मुसकाता जो है
कवि के स्वर में गाता जो है
दाता जो है, त्राता जो है
माता-पिता, विधाता जो है
उसी देवता के चरणों पर कवि के मस्तक का अभिमान !

●

जामवन्त के प्रश्न राम के उत्तर

यह सृष्टि कैसे हो गयी
इसका प्रयोजन क्यों हुआ!
इन पंच-तत्वों का मनोहर
मधुर योजन क्यों हुआ!

माना कि सुन्दर सत्य है तो
मोह का पाखण्ड क्यों!
सब एक ही तो हो गया है
खण्ड खण्ड अखण्ड क्यों!

जब एक ही है तत्त्व तब यह
युक्ति होनी चाहिये,
पायी किसी ने मुक्ति सबकी
मुक्ति होनी चाहिये।

व्यवहार त्वमहं का नहीं तब
मोक्ष किसको वन्ध है,
दो देखता है एक को क्या
विश्व सारा अन्ध है!

अद्वैत से तो आप ही हैं
जानकी भी राम भी,
जब चाँद सूरज दो नहीं, तब
सुवह भी है शाम भी।
अद्वैत का न रहस्य खुलता
बन्द आँखें खोल दें,

हैं आप कैसे मित्र, रावण
शत्रु क्यों है बोल दें।

सम्बन्ध होता द्वैत से ही
भक्त का भगवान् से,
कोई विधायक बोलता है
नियमबद्ध विधान से।

हो स्वप्न चाहे सत्य जग की
द्वैत से ही प्रीति है,
कोई अकेला रह न सकता
लोक की यह रीति है।

क्या द्वैत क्या अद्वैत, द्वैत
द्वैत का क्या खेल है,
आश्चर्य है साधर्म्य से
वैधर्म्य का भी मेल है।

सुन प्रश्न हँसकर राम बोले
प्रश्न अतिशय रम्य हैं,
जितने मनोहर दिव्य
उतने ही दुरूह अगम्य हैं।

अनुमान तर्क न खोलता
ऐसी बँधी यह गाँठ है,
पढ़ते सभी अथ इति न पाते
यह सनातन पाठ है।

मन की न मति की गति
वहाँ तक दूर से भी दूर है,
केवल वहाँ अनुभव पहुँचता
सूर भी मजबूर है।

जिस तरह निश्चल सिन्धु जल में
उतरता राकेश है,
होता प्रकाशित अम्बु निधि का
बाह्य अन्तर्देश है।

उस तरह आदिम चित्त में भी
ब्रह्म की छाया कभी,
युग शान्त चित सुख भोगता
जन्मी न थी माया अभी।
जैसे जलधि के कम्प से
होता मयंक अनेक है,
वैसे चपल चित हो उठा
अगणित गया बन एक है।
ज्यों - ज्यों हिला फँसता गया
अज्ञान से घिरता गया,
गुण में फँसा वह जीव
निर्गुण तत्त्व ब्रह्म कहा गया।
सुख - दुःख अनुभव जीव को है
ब्रह्म तो अविकार है,
यह जीव अपने रूप को भूला
यही संसार है।

जिस दिन स्वयं को जान लेगा
फिर वही बन जायेगा,
अज्ञान बन्धन खोलकर
अक्षर सही बन जायेगा।

●

राम-स्तवन

पहले अलख अव्यक्त में
यह मग्न दृश्य प्रपंच था,
कोई विधान न था कहीं
कोई न लीला मंच था।

इस रूप में फिर जग हुआ
इसके विधाता आप हीं,
सबके सदय माता पिता सब
काल त्राता आप हीं।

जो हैं सभी के ईश उनके
भी सनातन ईश हैं,
जिस एक से अगणित हुए
वह आप ही जगदीश हैं।

आकाश में फैले हुए हैं
आदि अन्त न आपका।
एकत्र पुंजीभूत भी क्या
है ज्वलन्त न आपका।

मन पर प्रभाव अभाव का ले
मैं अविद्या से घिरा,
अन्तर्नयन खोलें बहुत गिर-गिर
उठा, उठ - उठ गिरा।

कर लीन लेता है स्वयं में
प्राण पवन अपान को,

शशि प्राण को भास्वान
शशि को, ब्रह्म उस भास्वान को।

वह ब्रह्म शासक आप ही हैं
आपकी जय हो प्रभो!
सबके प्रकाशक आप ही हैं
आपकी जय हो प्रभो!

संसार सागर से बहुत ऊपर
सनातन हंस है,
ऊपर उठा न रहा मगर
वह एक अपना अंश है।

वह भी उठा ले तो न बन्धन
मोक्ष का झगड़ा रहे,
मिट जाय तम कोई कहीं
छोटा रहे न बड़ा रहे।
वह हंस शाश्वत आप ही हैं
आपकी जय हो प्रभो!
वह अंश जाग्रत आप ही हैं
आपकी जय हो प्रभो!

उद्‌भव निधन से दूर हैं
फिर प्रश्न क्या है मोक्ष का,
सन्तत रहस्य खुला हुआ
प्रत्यक्ष और परोक्ष का।
जग की विषमता बाँधती
देहाभिमानी व्यक्ति को,
छू भी सकी न कभी प्रभो
वह आप जैसी शक्ति को।

गति अगति सत्यासत्य भी हैं
सूक्ष्म भी हैं स्थूल भी,
हैं कुछ न, पर सब कुछ समय पर
याद भी हैं, भूल भी।

सबसे परे सबको समेटे
आप की जय हो प्रभो!
निर्मल हृदय में मौन लेटे
आपकी जय हो प्रभो!

भर नयन वानर भालु बोले
आप की जय हो प्रभो!
पद कंज के श्रद्धालु बोले
आप की जय हो प्रभो!

उड़ मधुप हिल जलजात बोले
आप की जय हो प्रभो!
डोले विटप के पात बोले
आप की जय हो प्रभो!

नभ से अमर्त्य अशेष बोले
आप की जय हो प्रभो!
नीचे धरा से शेष बोले
आप की जय हो प्रभो!

क्रमबद्ध तीनों काल बोले
आप की जय हो प्रभो!
दिशि-दिशि झुके दिक्पाल बोले
आप की जय हो प्रभो!

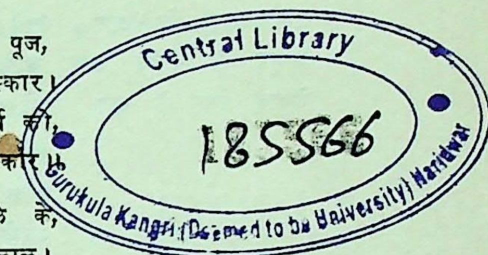
नक्षत्र शशि के साथ बोले
आप की जय हो प्रभो!

रथ रोककर दिननाथ बोले
आप की जय हो प्रभो!

गूँजा धरातल से गगन तक
आप की जय हो प्रभो!
जय आप की जय हो प्रभो!
जय आप की जय हो प्रभो!

हल्दीघाटी

'रण-यात्रा'



गणपति के पावन पाँव पूज,
वाणी-पद को कर नमस्कार।
उस चण्डी को, उस दुर्गा को,
काली-पद को कर नमस्कार॥

उस काल कूट पीने वाले के,
नयन याद कर लाल-लाल।
डग डग ब्रह्माण्ड हिला देता,
जिसके ताण्डव का ताल-ताल॥

ले महाशक्ति से शक्ति भीख,
व्रत रख वनदेवी रानी का।
निर्भय होकर लिखता हूँ मैं,
ले आशीर्वाद भवानी का॥

मुझको न किसी का भय-बन्धन,
क्या कर सकता संसार अभी।
मेरी रक्षा करने को जब,
राणा की है तलवार अभी॥

मन भर लोहे का कवच पहन,
कर एक लिंग को नमस्कार।
चल पड़ा वीर चल पड़ी साथ,
जो कुछ सेना थी लघु-अपार॥

घन घन घन घन घन गरज उठे,
रण वाद्य, सूरमा के आगे।
जागे पुश्तैनी साहस बल,
वीरत्व वीर-उर के जागे॥

सैनिक राणा के रण जागे,
राणाप्रताप के प्रण जागे।
जौहर के पावन क्षण जागे,
मेवाड़ देश के व्रण जागे॥

जागे शिशोदिया के सपूत
बापा के वीर-बबर जागे।
बरछे जागे, भाले जागे,
खन-खन तलवार तबर जागे॥

कुंभलगढ़ से चलकर राणा,
हल्दीघाटी पर ठहर गया।
गिरि अरावली की चोटी पर,
केसरिया-झंडा फहर गया॥

प्रणवीर अभी आया ही था,
अरि साथ खेलने को होली।
तब तक पर्वत-पथ से उतरा,
पुंजा ले भीलों की टोली॥

भैरव-रव से जिनके आगे,
रण के बजते बाजे आये।
इंगित पर मर मिटने वाले,
वे राजे-महराजे आये॥

सुनकर जय हर-हर सैनिक रव,
वह अचल अचानक जाग उठा।

राणा को उर से लगा लिया,
चिर निद्रित जग अनुराग उठा॥

नभ की नीली चादर ओढ़े,
युग-युग से गिरिवर सोता था।
तरु-तरु के कोमल पत्तों पर,
मारुत का नर्तन होता था॥

चलते चलते जब थक जाता,
दिनकर करता आराम वहीं।
अपनी तारक-माला पहने,
हिमकर करता विश्राम वहीं॥
गिरि गुहा-कन्दरा के भीतर,
अज्ञान-सदृश था अन्धकार।
बाहर पर्वत का खण्ड खण्ड,
था ज्ञान-सदृश उज्ज्वल अपार॥

वह भी कहता था अम्बर से,
मेरी छाती पर रण होगा।
जननी-सेवक - उर - शोणित से
पावन मेरा कण-कण होगा॥
पाषाण-हृदय भी पिघल-पिघल,
आँसू बन कर गिरता झर-झर।
गिरिवर भविष्य पर रोता था,
जग कहता था उसको निर्झर॥

वह लिखता था चट्टानों पर,
राणा के गुण अभिमान सजल।
वह सुना रहा था मृदु स्वर से,
सैनिक को रण के गान सजल॥

वह चला चपल निर्झर झर-झर,
वसुधा-उर-ज्वाला खोने को।
या थके महाराणा-पद को,
पर्वत से उतरा धोने को।।

लघु-लघु लहरों में ताप-विकल,
दिनकर दिन भर मुख धोता था।
निर्मल निर्झर जल के अन्दर,
हिमकर रजनी भर सोता था।।

राणा पर्वत-छवि देख रहा,
था, उन्नत कर अपना भाला।
थे विटप खड़े पहनाने को,
लेकर मृदु कुसुमों की माला।।

लाली के साथ निखरती थी,
पल्लव-पल्लव की हरियाली।
डाली-डाली पर बोल रही,
थी कुहू-कुहू कोयल काली।।

निर्झर की लहरें चूम-चूम,
फूलों के वन में घूम-घूम।
मलयानिल बहता मन्द-मन्द,
बौरे आमों में झूम-झूम।।

जब तुहिन-भार से चलता था,
धीरे-धीरे मारुत कुमार।
तब कुसुम-कुमारी देख-देख,
उस पर हो जाती थी निसार।।

उड़-उड़ गुलाब पर बैठ बैठ,
करते थे मधु का पान मधुप।

गुन-गुन-गुन-गुन-गुन कर करते,
राणा के यश का गान मधुप॥

लोनी लतिका पर झूल झूल,
बिखराते कुसुम पराग प्यार।
हँस-हँसकर कलियाँ झाँक रही,
थीं, खोल पँखुरियों के किवार॥

तरु-तरु पर बैठे मृदु स्वर से,
गाते थे स्वागत-गान शकुनि।
कहते यह ही बलि-वेदी है
इस पर कर दो बलिदान शकुनि॥

केसर से निर्झर-कूल लाल,
फूले पलास के फूल लाल।
तुम भी बैरी-सिर काट-काट,
कर दो शोणित से धूल लाल॥

तुम तरजो-तरजो वीर, रखो,
अपना गौरव अभिमान यहीं।
तुम गरजो-गरजो सिंह, करो,
रण-चण्डी का आह्वान यहीं॥
खग-रव सुनते ही रोम रोम,
राणा तन के फर-फरा उठे।
जर-जरा उठे सैनिक अरि पर
पत्ते-पत्ते थरथरा उठे॥
तरु के पत्तों से, तिनकों से,
बन गया यहीं पर राजमहल।
उस राजकुटी के वैभव से,
अरि का सिंहासन गया दहल॥

बस गये अचल पर राजपूत,
अपनी-अपनी रख ढाल प्रबल।
जय बोल उठे राणा की रख,
बरछे भाले-करवाल प्रबल ।।

राणा प्रताप की जय बोले,
अपने नरेश की जय बोले।
भारत माता की जय बोले,
मेवाड़-देश की जय बोले ।।

जय एकलिंग, जय एकलिंग,
जय-प्रलयंकर शंकर हर-हर।
जय हर-हर गिरि का बोल उठा,
कंकड़-कंकड़ पत्थर-पत्थर ।।

●

वन-श्री

नाना तरु-बेलि लता मय,
पर्वत पर निर्जन वन था।
निशि बसती थी झुरमुट में,
वह इतना घोर सघन था।।

पत्तों से छन-छन कर थी,
आती दिनकर की लेखा।
वह भूतल पर बनती थी,
पतली-सी स्वर्णिम रेखा।।

लोनी लोनी लतिका पर,
अविराम कुसुम खिलते थे।
बहता था मारुत, तरु दल,
धीरे-धीरे हिलते थे।।

नीलम पल्लव की छवि से,
थी ललित मंजरी-काया।
सोती थी तृण-शय्या पर,
कोमल रसाल की छाया।।

मधु पिला-पिला तरु-तरु को,
थी बना रही मतवाला।
मधु-स्नेह-वलित बाला-सी,
थी नव मधूक की माला।

खिलती शिरीष की कलियाँ,
संगीत मधुर झुन-रुन - झुन।

तरु-मिस बन झूम रहा था,
खग-कुल स्वरलहरी सुन-सुन ।।

माँ झूला झूल रही थी,
नीमों के मृदु झूलों पर।
बलिदान-गान गाते थे,
मधुकर बैठे फूलों पर ।।

थी नव दल की हरियाली,
बट छाया मोद भरी थी।
नव अरुण-अरुण गोदों से
पीपल की गोद भरी थी ।।

कमनीय कुसुम खिल-खिलकर,
टहनी पर झूल रहे थे।
खग बैठे थे मन मारे,
सेमल-तरु फूल रहे थे ।।

इस तरह अनेक विटप थे,
थी सुमन-सुरभि की माया।
सुकुमार-प्रकृति ने जिनकी,
थी रची मनोहर काया ।।

बादल ने उनको सींचा,
दिनकर-कर ने गरमी दी।
धीरे - धीरे सहलाकर,
मारुत ने जीवन - श्री दी ।।

मीठे-मीठे फल खाते,
शाखामृग शाखा पर थे।
शक देख देख होता था,
वे बानर थे वा नर थे ।।

फल कुतुर-कुतुर खाती थीं,
तरु पर बैठी गिलहरियाँ।
पंचम स्वर में गा उठतीं,
रह-रहकर वन की परियाँ॥

चह-चह-चह फुदक-फुदककर,
डाली से उस डाली पर।
गाते थे पक्षी होकर,
न्यौछावर वनमाली पर॥

चरकर, पगुराती माँ को,
दे सींग ढकेल रहे थे।
कोमल-कोमल घासों पर,
मृग-छौने खेल रहे थे॥

अधखुले नयन हरिणी के,
मृदु-काय हरिण खुजलाते।
झाड़ी में उलझ-उलझ कर,
बारहसिंघे झुंझलाते॥

वन धेनु-दूध पीते थे,
लेरू द्रुम हिला-हिलाकर।
माँ उनको चाट रही थी,
तन से तन मिला मिला कर॥

चीते नन्हें शिशु ले ले,
चलते मन्थर चालों से।
क्रीड़ा करते थे नाहर,
अपने लघु-लघु बालों से॥

झरनों का पानी लेकर,
गज छिड़क रहे मतवाले।

मानों जल बरस रहे हों,
सावन-घन काले काले ॥
भैंसे भू खोद रहे थे,
आ नहा-नहा नालों से ।
थे केलि भील भी करते,
भालों से, करवालों से ॥

नव हरी-हरी दूबों पर,
बैठा था भीलों का दल।
निर्मल समीप ही निर्झर,
बहता था, कल-कल छल-छल ॥

ले सहचर मान शिविर से,
निर्झर के तीरे-तीरे।
अनिमेष देखता आया,
वन की छवि धीरे-धीरे ॥

उसने भीलों को देखा,
उसको देखा भीलों ने।
तन में बिजली-सी दौड़ी,
वन लगा भयावह होने ॥

●

समर

जग में जागृति पैदा कर दूं,
वह मंत्र नहीं, वह तंत्र नहीं।
कैसे वाँछित कविता कर दूँ,
मेरी यह कलम स्वतंत्र नहीं॥

अपने उर की इच्छा भर दूं,
ऐसा है कोई यंत्र नहीं।
हलचल-सी मच जाये पर यह,
लिखता हूँ रण-षड्यंत्र नहीं॥

ब्राह्मण है तो आँसू भर ले,
क्षत्रिय है नत-मस्तक कर ले।
है वैश्य-शूद्र तो बार-बार,
अपनी सेवा पर शक कर ले॥
दुख देह-पुलक कम्पन होता,
हा, विषय गहन यह नभ सा है।
यह हृदय-विदारक वही समर,
जिसका लिखना दुर्लभ-सा है॥

फिर भी पीड़ा से भरी कलम,
लिखती प्राचीन कहानी है।
लिखती हल्दीघाटी रण की,
वह अजर अमर कुर्बानी है॥

सावन का हरित प्रभात रहा,
अम्बर पर थी घनघोर घटा।

फहरा कर पंख थिरकते थे,
मन हरती थी बन-मोर छटा ।।

पड़ रही फुही झींसी झिन झिन,
पर्वत की हरी वनाली पर।
'पी कहाँ?' पपीहा बोल रहा,
तरु-तरु की डाली-डाली पर।

वारिद के उर में चमक-दमक,
तड़-तड़ बिजली थी तड़क रही।
रह-रह कर जल था बरस रहा,
रणधीर-भुजा थी फड़क रही ।।

था मेघ बरसता झिमिर-झिमिर,
तटिनी की भरी जवानी थी।
बढ़ चली तरंगों की असि ले,
चण्डी-सी वह मस्तानी थी ।।

यह घटा चाहती थी जल से,
सरिता सागर निर्झर भरना।
वह घटा चाहती शोणित से,
पर्वत का कण-कण तर करना ।।

धरती की प्यास बुझाने को,
वह घहर रही थी घन-सेना।
लोहू पीने के लिये खड़ी?
यह हहर रही थी जन-सेना ।।

नभ पर चम-चम चपला चमकी,
चम-चम चमकी तलवार इधर।
भैरव अमन्द घन-नाद उधर,
दोनों दल की ललकार इधर ।।

वह कड़ कड़ कड़ कड़ कड़क उठी,
यह भीम नाद से तड़क उठी।
भीषण संगर की आग प्रबल,
वैरी सेना में भड़क उठी॥

डग डग डग डग रण के डंके,
मारू के साथ भयद बाजे।
टप-टप-टप घोड़े कूद पड़े,
कट-कट मतंग के रद बाजे॥

अब देर न थी वैरी-वन में,
दावानल के सम छूट पड़े।
इस तरह वीर झपटे उन पर,
मानों हरि मृग पर टूट पड़े॥

मरने कटने की बान रही,
पुश्तैनी इससे आह न ही।
प्राणों की रंचक चाह न की
तोपों की भी परवाह न की॥

रण-मत्त लगे बढ़ने आगे,
सिर काट-काट करवालों से।
संगर की मही लगी पटने,
क्षण-क्षण अरि-कंठ कपालों से॥

हाथी सवार हाथी पर थे,
बाजी सवार बाजी पर थे।
पर उनके शोणित-मय मस्तक,
अवनी पर मृत राजी पर थे॥

आँखों में भाला भोंक दिया,
लिपटे अन्धे जन अन्धों से।

सिर कटकर भू पर लोट गये,
लड़ गये कबन्ध कबन्धों से॥

अरि-कुन्त घुसा झट उसे दबा,
अपने सीने के पार किया।
इस तरह निकट वैरी-उर को,
कर-कर कटार से फार दिया॥

कोई खरतर करवाल उठा,
सेना पर बरसा आग गया।
गिर गया शीश, कटकर भू पर,
घोड़ा धड़ लेकर भाग गया॥

कोई करता था रक्त वमन,
छिद गया किसी सैनिक का तन।
कट गया किसी का एक बाहु,
कोई था सायक-विद्ध नयन॥

गिर पड़ा पीन गज, फटी धरा,
खर रक्त-वेग से कटी धरा।
चोटी-दाढ़ी से पटी धरा,
रण करने को भी घटी धरा॥

भर रक्त तलैया चली उधर,
सेना-उर में भर शोक चला।
जननी-पद शोणित से धो-धो,
हर राजपूत हर-लोक चला॥

•

पुनः युद्ध

हाथी से हाथी जूझ पड़े,
भिड़ गए सवार सवारों से।
घोड़ों पर घोड़े टूट पड़े,
तलवार लड़ी तलवारों से।।

हय-रुण्ड गिरे, गज मुण्ड गिरे,
कट-कट अवनी पर शुण्ड गिरे।
लड़ते लड़ते अरि-झुण्ड गिरे,
भू पर हय विकल वितुण्ड गिरे।।

क्षण महाप्रलय की बिजली सी,
तलवार हाथ की तड़प तड़प।
हय-गज-रथ-पैदल भगा भगा,
लेती थी वैरी-वीर हड़प।।

क्षण पेट फट गया घोड़े का,
हो गया पतन कर कोड़े का।
भू पर सातंक सवार गिरा,
क्षण पता न था हय-जोड़े का।।

चिग्घाड़ भगा भय से हाथी,
लेकर अंकुश पिलवान गिरा।
झटका लग गया, फटी झालर,
हौदा गिर गया, निशान गिरा।।

कोई नत मुख बेजान गिरा,
करवट कोई उत्तान गिरा।

रण बीच अमित भीषणता से,
लड़ते लड़ते बलवान गिरा॥

होती थी भीषण मार-काट,
अतिशय रण से छाया था भय।
था हार जीत का पता नहीं,
क्षण इधर विजय क्षण उधर विजय॥

कोई व्याकुल भर आह रहा,
कोई था विकल कराह रहा।
लोहू से लथपथ लोथों पर,
कोई चिल्ला अल्लाह रहा॥

धड़ कहीं पड़ा, सिर कहीं पड़ा,
कुछ भी उसकी पहचान नहीं।
शोणित का ऐसा वेग बढ़ा,
मुरदे बह गए निशान नहीं॥

मेवाड़-केसरी देख रहा,
केवल रण का न तमाशा था।
वह दौड़-दौड़ करता था रण,
वह मान-रक्त का प्यासा था॥

चढ़कर चेतक पर घूम-घूम,
करता सेना रखवाली था।
ले महामृत्यु को साथ-साथ,
मानों प्रत्यक्ष कपाली था॥

रण बीच चौकड़ी भर-भरकर,
चेतक बन गया निराला था।
राणाप्रताप के घोड़े से,
पड़ गया हवा का पाला था॥

गिरता न कभी चेतक तन पर,
राणाप्रताप का कोड़ा था।
वह दौड़ रहा अरि-मस्तक पर,
या आसमान पर घोड़ा था।।

जो तनिक हवा से बाग हिली,
लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नहीं,
तब तक चेतक मुड़ जाता था।।

कौशल दिखलाया चालों में,
उड़ गया भयानक भालों में।
निर्भीक गया वह ढालों में,
सरपट दौड़ा करवालों में।।

है यहीं रहा, अब यहाँ नहीं,
वह वहीं रहा, है वहाँ नहीं।
थी जगह न कोई जहाँ नहीं,
किस अरि मस्तक पर कहाँ नहीं।।

बढ़ते नद-सा वह लहर गया,
वह गया-गया फिर ठहर गया।
विकराल वज्रमय बादल-सा,
अरि की सेना पर घहर गया।।

भाला गिर गया, गिरा निषंग,
हय टापों से खन गया अंग।
वैरी-समाज रह गया दंग,
घोड़े का ऐसा देख रंग।।

चढ़ चेतक पर तलवार उठा,
रखता था भूतल पानी को।

राणाप्रताप सिर काट-काट,
करता था सफल जवानी को ॥

कल-कल बहती थी रण-गंगा,
अरि-दल को डूब लगाने को,
तलवार वीर की नाव बनी,
चटपट उस पार लगाने को ॥

वैरी-दल को ललकार गिरी,
वह नागिन-सी फुफकार गिरी।
था शोर मौत से बचो-बचो,
तलवार गिरी तलवार गिरी ॥

पैदल से हय-दल गज-दल में,
छप-छप करती वह निकल गई।
क्षण कहाँ गई कुछ पता न फिर,
देखो चम चम वह निकल गई ॥

क्षण इधर गई क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गई।
था प्रलय, चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया किधर गई ॥

क्या अजब विषैली नागिन थी,
जिसके डसने में लहर नहीं।
उतरी तन से मिट गये वीर,
फैला शरीर में जहर नहीं ॥

थी छुरी कहीं, तलवार कहीं,
वह बरछी, अस खर-धार कहीं।
वह आग कहीं अंगार कहीं,
बिजली थी कहीं कटार कहीं ॥

लहराती थी सिर काट-काट,
बल खाती थी भू पाट-पाट।
बिखराती अवयव बाट-बाट,
तनती थी लोहू चाट-चाट॥

सेना-नायक राणा के भी,
रण देख-देखकर चाह भरे।
मेवाड़ सिपाही लड़ते थे,
दूने-तिगुने उत्साह भरे॥

क्षण मार दिया कर कोड़े से,
रण किया उतर कर घोड़े से।
राणा रण कौशल दिखा-दिखा,
चढ़ गया उतर कर घोड़े से॥

क्षण भीषण हलचल मचा-मचा,
राणा कर की तलवार बढ़ी।
था शोर रक्त पीने को यह,
रण-चण्डी जीभ पसार बढ़ी॥

वह हाथी दल पर टूट पड़ा,
मानों उस पर पवि टूट पड़ा।
कट गयी वेग से भू, ऐसा
शोणित का नाला फूट पड़ा॥

जो साहस कर बढ़ता उसको,
केवल कटाक्ष से टोक दिया।
जो वीर बना नभ-बीच फेंक,
बरछे पर उसको रोक दिया॥

क्षण उछल गया अरि घोड़े पर,
क्षण लड़ा सो गया घोड़े पर।

बैरी-दल से लड़ते-लड़ते,
क्षण खड़ा हो गया घोड़े पर ॥

क्षण भर में गिरते रुण्डों से,
मदमस्त गजों के शुण्डों से।
घोड़ों से विकल वितुण्डों से,
पट गई भूमि नर-मुण्डों से ॥

घास की रोटी

पावस बीता पर्वत पर,
नीलम घासें लहराईं।
कासों की श्वेत ध्वजाएँ,
किसने आकर फहराईं!

नव पारिजात कलिका का,
मारुत आलिंगन करता।
कम्पित-तन मुसकाती है,
वह सुरभि-प्यार ले बहता॥

कर स्नान नियति-रमणी ने,
नव हरित वसन है पहना।
किससे मिलने को तन में,
झिलमिल तारों का गहना॥

पर्वत पर अवनी तल पर,
तरु-तरु के नीलम दल पर।
यह किसका बिछा रजत पट,
सागर के वक्षस्थल पर॥

वह किसका हृदय निकलकर,
नीरव नभ पर मुसकाता!
वह कौन सुधा वसुधा पर,
रिमझिम-रिमझिम बरसाता॥

तारक मोती का गजरा,
है कौन उसे पहनाता!

नभ के सुकुमार हृदय पर,
वह किसको कौन रिझाता॥
पूजा के लिए किसी की,
क्या नभ-सर कमल खिलाता!
गुदगुदा सती रजनी को,
वह कौन छली इतराता॥

वह झूम-झूम कर किसको,
नव नीरव गान सुनाता!
क्या शशि - तारक मोती से,
नभ नीलम-थाल सजाता॥

जब से शशि को पहरे पर,
दिनकर सो गया जगाकर।
कविता - सी कौन छिपी है,
यह ओढ़ रुपहली चादर॥
क्या चाँदी की डोरी से,
वह नाप रहा है दूरी!
या शेष जगह भू-नभ की,
करता ज्योत्स्ना से पूरी॥
इस उजियाली में, जिसमें
हँसता है कलित-कलाधर।
है कौन खोजता किसको
जुगनू के दीप जलाकर॥
लहरों के मृदु - अधरों का,
विधु झुक-झुक करता चुम्बन।
घुल कोई के प्राणों में,
वह बना रहा जग निधुवन॥

घूँघट-पट खोल शशी से,
हँसती है कुमुद-किशोरी।
छवि देख-देख बलि जाती,
बेसुध अनिमेष चकोरी॥

इन दूबों के टुनगों पर,
किसने मोती बिखराए!
या तारे नील-गगन से,
स्वच्छन्द विचरने आए॥

या बँधी हुई हैं अरि की,
जिसके कर में हथकड़ियाँ।
उस पराधीन जननी की,
बिखरी आँसू की लड़ियाँ॥

इस स्मृति से ही राणा के,
उर की कलियाँ मुरझाईं।
मेवाड़ - भूमि को देखा,
उसकी आँखें भर आईं॥

अब समझा साधु सुधाकर,
कर से सहला-सहलाकर।
दुर्दिन में मिटा रहा है,
उर-ताप सुधा बरसाकर॥

जननी-रक्षा हित जितने,
मेरे रणधीर मरे हैं।
वे ही विस्तृत अम्बर पर,
तारों के मिस बिखरे हैं॥

मानव गौरव हित मैंने,
उन्मत्त लड़ाई छेड़ी।

अब पड़ी हुई है माँ के,
पैरों में अरि की बेड़ी ।।
पर हाँ, जब तक हाथों में,
मेरी तलवार बनी है।
सीने में घुस जाने को,
भाले की तीव्र अनी है ।।

जब तक नस में शोणित है,
श्वासों का ताना-बाना।
तब तक अरि-दीप बुझाना,
है बन-बनकर परवाना ।।

घासों की रूखी रोटी,
जब तक सोते का पानी।
तब तक जननी-हित होगी,
कुर्बानी पर कुर्बानी ।।

राणा ने विधु-तारों को,
अपना प्रण-गान सुनाया।
उसके उस गान वचन को,
गिरि कण-कण ने दुहराया ।।

इतने में अचल गुहा से,
शिशु-क्रन्दन की ध्वनि आई।
कन्या के क्रन्दन में थी,
करुणा की व्यथा समाई ।।

उसमें कारागृह से थी,
जननी की अचिर रिहाई।
या उसमें थी राणा से,
माँ की चिर छिपी जुदाई ।।

भालों से तलवारों से,
तीरों की बौछारों से।
जिसका न हृदय चंचल था,
वैरी दल ललकारों से॥

दो दिन पर मिलती रोटी,
वह भी तृण की घासों की।
कंकड़-पत्थर की शय्या,
परवाह न आवासों की॥

लाशों पर लाशें देखी,
घायल कराहते देखे।
अपनी आँखों से अरि को,
निज दुर्ग ढाहते देखे॥

तो भी उस वीर-व्रती का,
था अचल हिमालय-सा मन।
पर हिम-सा पिघल गया वह,
सुनकर कन्या का क्रन्दन॥

आँसू की पावन गंगा,
आँखों से झर-झर निकली।
नयनों के पथ से पीड़ा,
सरिता-सी बहकर निकली॥

भूखे - प्यासे - कुम्हलाये,
शिशु को गोदी में लेकर।
पूछा, तुम क्यों रोती हो,
करुणा को करुणा देकर॥

अपनी तुतली भाषा में,
वह सिसक-सिसक कर बोली।

जलती थी भूख-तृषा की,
उसके अन्तर में होली॥

हा छही न जाती मुझछे,
अब आज भूख की ज्वाला।
कल छे ही प्याछ लगी है,
हो लहा हिदय मतवाला॥

माँ ने घाछों की लोती,
मुझको दी थी खाने को।
छोते का पानी देकल,
वह बोली भग जाने को॥

अम्मा छे दूल यहीं पल,
छूकी लोती खाती थी।
जो पहले छुना छुकी हूँ,
वह देछ गीत गाती थी॥

छच कहती, केवल मैंने
एकाध कवल खाया था।
तब तक बिलाव ले भागा,
जो इछीलिए आया था॥

छुनती हूँ तू लाजा है,
मैं प्याली छौनी तेली।
क्या दया न तुझको आती,
यह दछा देख कल मेली॥

लोती थी, तो देता था,
खाने को मुझे मिथाई।
अब खाने को लोती तो,
आती क्यों तुझे लुलाई॥

वह कौन छत्रु है जिछने,
छेना का नाछ किया है!
तुझको, माँ को, हम छमको,
जिछने बनबाछ दिया है॥

यक छोटी-छी पैनी छी,
तलवाल मुझे भी दे दो।
मैं उछको माल भगाऊँ,
छन मुझको लन कलने दो॥

कन्या की बातें सुनकर,
रो पड़ी अचानक रानी।
राणा की आँखों से भी,
अविरल बहता था पानी॥

उस निर्जन में बच्चों ने,
माँ-माँ कह-कहकर रोया।
लघु-शिशु-विलाप सुन-सुनकर,
धीरज ने धीरज खोया॥

वह स्वतंत्रता कैसी है,
वह कैसी है आजादी।
जिसके पद पर बच्चों ने,
अपनी मुक्ता बिखरा दी॥

सहने की सीमा होती,
सह सका न पीड़ा अन्तर।
हा, सन्धि-पत्र लिखने को,
वह बैठ गया आसन पर॥

कह, 'सावधान' रानी ने,
राणा का थाम लिया कर।

बोली अधीर पति से वह,
कागज मसि-पात्र छिपाकर॥

'तू भारत का गौरव है,
तू जननी-सेवा-रत है।
सच कोई मुझसे पूछे,
तो तू ही तू भारत है॥

तू प्राण सनातन का है,
मानवता का जीवन है।
तू सतियों का अंचल है,
तू पावनता का धन है॥

यदि तू ही कायर बनकर,
वैरी से सन्धि करेगा।
तो कौन भला भारत का,
बोझा माथे पर लेगा॥

लुट गये लाल गोदी के,
तेरे अनुगामी होकर।
कितनी विधवाएँ रोतीं,
अपने प्रियतम को खोकर॥

आजादी का लालच दे,
झाला का प्रान लिया है।
चेतक-सा बाजि गँवाकर,
पूरा अरमान किया है॥

तू सन्धि-पत्र लिखने का,
कह कितना है अधिकारी!
जब बन्दी माँ के दृग से,
अब तक आँसू है जारी॥

थक गया समर से तो अब,
रक्षा का भार मुझे दे।
मैं चण्डी-सी बन जाऊँ,
अपनी तलवार मुझे दे ॥"

मधुमय कटु बातें सुनकर,
देखा ऊपर अकुलाकर।
कायरता पर हँसता था,
तारों के साथ निशाकर ॥

झाला सम्मुख मुसकाता,
चेतक धिक्कार रहा है।
असि, चाह रही कन्या भी,
तू आँसू ढार रहा है॥

मर मिटे वीर जितने थे,
वे एक-एक कर आते।
रानी की जय-जय करते,
उससे हैं आँख चुराते॥

हो उठा विकल, उर-नभ का,
हट गया मोह - घन काला।
देखा, वह ही रानी है,
वह ही अपनी तृण-शाला॥

बोला, वह अपने कर में,
रमणी-कर थाम 'क्षमा कर'।
हो गया निहाल जगत् में,
मैं तुम - सी रानी पाकर॥

इतने में बैरी-सेना ने,
राणा को घेर लिया आकर।

४ (१)

पर्वत पर हाहाकार मचा,
तलवारें झनकीं बल खाकर ॥

तब तक आए रणधीर भील,
अपने कर में हथियार लिए।
पा उनकी मदद छिपा राणा,
अपना भूखा परिवार लिए ॥



बनवासी प्रताप

थी आधी रात अँधेरी,
तम की घनता थी छाई।
कमलों की आँखों से भी,
कुछ देता था न दिखायी।।

पर्वत पर घोर विजन में,
नीरवता का शासन था।
गिरि अरावली सोया था,
सोया तमसावृत बन था।।

धीरे से तरु के पल्लव,
गिरते थे भू पर आकर।
नीड़ों में खग सोये थे,
सन्ध्या को गान सुनाकर।।

नाहर अपनी माँदों में,
मृग वन-लतिका झुरमुट में।
दृग मूँद सुमन सोये थे,
पंखुरियों के सम्पुट में।।
गाकर मधु-गीत मनोहर,
मधुमाखी मधु छातों पर।
सोई थीं बाल - तितलियाँ,
मुकुलित नव - जलजातों पर।।

तिमिरालिंगन से छाया,
था एकाकार निशाकर।

सोयी थी नियति अचल पर,
ओढ़े घन-तम की चादर॥

आँखों के अन्दर पुतली,
पुतली में तिल की रेखा।
उसने भी उस रजनी में,
केवल तारों को देखा॥

वे नभ पर काँप रहे थे,
था शीत-कोप कँगलों में।
सूरज-मयंक सोये थे,
अपने - अपने बँगलों में॥

निशि अंधियाली में निद्रित,
मारुत रुक-रुक चलता था।
अम्बर था तुहिन बरसता,
पर्वत हिम-सा गलता था॥

हेमन्त शिशिर का शासन,
लम्बी थी रात विरह-सी।
संयोग-सदृश लघु वासर,
दिनकर की छवि हिमकर-सी॥

निर्धन के फटे-पुराने,
पट के छिद्रों से आकर।
शर सदृश हवा लगती थी,
पाषाण हृदय दहला कर॥

लगती चन्दन-सी शीतल,
पावक की जलती ज्वाला।
बाड़व भी काँप रहा था,
पहने तुषार की माला॥

जग अधर विकल हिलते थे,
चलदल के दल से थर-थर।
ओसों के मिस नभ-दृग से,
बहते थे आँसू झर-झर॥

यव की कोमल बालों पर,
मटरों की मृदु फलियों पर।
नभ के आँसू बिखरे थे,
तीसी की नव कलियों पर॥

घन हरित चने के पौधे,
जिनमें कुछ लहरे जेठे।
भिग गए ओस के जल से,
सरसों की पीत मुरेठे॥

वह शीतकाल की रजनी,
कितनी भयदायक होगी।
पर उसमें भी करता था,
तप एक वियोगी योगी॥

वह नीरव निशीथिनी में,
जिसमें दुनिया थी सोई।
निर्झर की करुण-कहानी,
बैठा सुनता था कोई॥

उस निर्झर के तट पर ही,
राणा की दीन-कुटी थी।
वह कोने में बैठा था,
कुछ बंकिम-सी भृकुटी थी॥

वह कभी कथा झरने की,
सुनता था कान लगाकर।

वह कभी सिहर उठता था,
मारुत के झोंके खाकर ॥
नीहार भार नत मन्थर,
निर्झर से सीकर लेकर ।
जब कभी हवा चलती थी,
पर्वत को पीड़ा देकर ॥
तब वह कथरी के भीतर,
आहें भरता था सोकर ।
वह कभी याद जननी की,
करता था पागल होकर ॥

वह कहता था वैरी ने,
मेरे गढ़ पर गढ़ जीते ।
वह कहता रोकर, माँ की,
अब सेवा के दिन बीते ॥

यद्यपि जनता के उर में,
मेरा ही अनुशासन है ।
पर इंच - इंच भर भू पर,
अरि का चलता शासन है ॥
दो चार दिवस पर रोटी,
खाने को आगे आई ।
केवल सूरत भर देखी,
फिर भगकर जान बचाई ॥
अब वन-वन फिरने के दिन,
मेरी रजनी जगने की ।
क्षण आँखों के लगते ही,
आई नौबत भगने की ॥

मैं बहला रहा हूँ शिशु को,
कह-कहकर समर-कहानी।
बुद-बुद कुछ पका रही है,
हा, सिसक-सिसक कर रानी॥

आँसू जल पोंछ रही है,
चिर क्रीत पुराने पट से।
पानी पनिहारिन - पलकें,
भरतीं अन्तर-पनघट से॥

तव तक चमकी वैरी असि,
मैं भगकर छिपा अनारी।
काँटों के पथ से भागी,
हा, वह मेरी सुकुमारी॥

तृण घास-पात का भोजन,
रह गया वहीं पकता ही।
मैं झुरमुट के छिद्रों से,
रह गया उसे तकता ही॥

चलते-चलते थकने पर,
बैठा तरु की छाया में।
क्षण भर ठहरा सुख आकर,
मेरी जर्जर-काया में॥

जल हीन रो पड़ी रानी,
बच्चों को तृषित रुलाकर।
कुश-कण्टक की शय्या पर,
वह सोई उन्हें सुलाकर॥

तब तक अरि के आने की,
आहट कानों में आई।

बच्चों ने आँखें खोलीं,
कह-कहकर माई-माई ।।

रव के भय से शिशु-मुख को,
वल्कल से बाँध भगे हम।
गह्वर में छिपकर रोने,
रानी के साथ लगे हम ।।

वह दिन न अभी भूला है,
भूला न अभी गह्वर है।
सम्मुख दिखलाई देता,
वह आँखों का झर-झर है ।।

जब सहन न होता, उठता,
लेकर तलवार अकेला।
रानी कहती न अभी है,
संगर करने की बेला ।।

तब भी न तनिक रुकता तो,
बच्चे रोने लगते हैं।
खाने को दो कह - कहकर,
व्याकुल होने लगते हैं ।।

मेरे निर्बल हाथों से,
तलवार तुरत गिरती है।
इन आँखों की सरिता में,
पुतली-मछली तिरती है ।।

हा, क्षुधा-तृषा से आकुल,
मेरा यह दुर्बल तन है।
इसको कहते जीवन क्या !
यह ही जीवन जीवन है !

अब जननी के हित मुझको,
मेवाड़ छोड़ना होगा।
कुछ दिन तक माँ से नाता,
हा, विवश तोड़ना होगा॥

अब दूर विजन में रहकर,
राणा कुछ कर सकता है।
जिसकी गोदी में खेला,
उसका ऋण भर सकता है॥

यह कहकर उसने निशि में,
अपना परिवार जगाया।
आँखों में आँसू भरकर,
क्षण उनको गले लगाया॥

बोला—"तुम लोग यहीं से,
माँ का अभिवादन कर लो।
अपने - अपने अन्तर में,
जननी की सेवा भर लो॥

चल दो, क्षण देर करो मत,
अब समय न है रोने को।
मेवाड़ न दे सकता है,
तिल भर भी भू सोने को॥

चल किसी विजन कोने में,
अब शेष बिता दो जीवन।
इस दुखद भयावह ज्वर की,
यह ही है दवा सजीवन॥"

सुन, व्यथा-कथा रानी ने,
आँचल का कोना धरकर।

कर लिया मूक अभिवादन,
आँखों में पानी भरकर।।

हा, काँप उठा रानी के,
तन-पट का धागा धागा।
कुछ मौन-मौन जब माँ से,
अंचल पसार कर माँगा।।

बच्चों ने भी रो-रोकर,
की विनय वन्दना माँ की।
पत्थर भी पिघल रहा था,
वह देख-देखकर झाँकी।।

राणा ने मुकुट नवाया,
चलने की हुई तयारी।
पत्नी, शिशु लेकर आगे,
पीछे पति बल्कल-धारी।।

तत्काल किसी के पद का,
खुर-खुर रव दिया सुनाई।
कुछ मिली मनुज की आहट,
फिर जय-जय की ध्वनि आई।।

राणा की जय राणा की,
जय जय राणा की जय हो।
जय हो प्रताप की जय हो,
राणा की सदा विजय हो।।

वह ठहर गया रानी से,
बोला—"मैं क्या हूँ सोता!
मैं स्वप्न देखता हूँ या,
भ्रम से ही व्याकुल होता।।

तुम भी सुनती या मैं ही,
श्रुति-मधुर नाद सुनता हूँ।
जय-जय की मन्थर ध्वनि में,
मैं मुक्तिवाद सुनता हूँ॥"

तब तक भामा ने फेंकी,
अपने हाथों की लकुटी।
'मेरे शिशु' कह राणा के,
पैरों पर रख दी त्रिकुटी॥

आँसू से, पद को धोकर,
धीमे धीमे वह बोला—
"यह मेरी सेवा" कहकर,
थैलों के मुह को खोला॥

खन-खन-खन मणिमुद्रा की,
मुक्ता की राशि लगा दी।
रत्नों की ध्वनि से वन की,
नीरवता सकल भगा दी॥

"एकत्र करो इस धन से,
तुम सेना वेतन - भोगी।
तुम एक बार फिर जूझो,
अब विजय तुम्हारी होगी॥

कारागृह में बन्दी माँ,
नित करती याद तुम्हें है।
तुम मुक्त करो जननी को,
यह आशीर्वाद तुम्हें है॥"

वह निर्बल वृद्ध तपस्वी,
लग गया हाँफने कहकर।

॥ उनसठ ॥

गिर पड़ी लार अवनी पर,
हा ! उसके मुख से बहकर ।।

वह कह न सका कुछ आगे,
सब भूल गया आने पर।
कटि-जानु थामकर बैठा,
वह भू पर थक जाने पर ।।

राणा ने गले लगाया,
कायरता धो लेने पर।
फिर बिदा किया भामा को,
घुल-घुल कर रो लेने पर ।।

खुल गये कमल कोषों के,
कारागृह के दरवाजे।
उससे बन्दी अलि निकले,
संगर के बाजे, बाजे ।।

ऊषा ने राणा के सिर,
सोने का ताज सजाया।
उठकर मेवाड़ - विजय का,
खग-कुल ने गाना गाया ।।

कोमल - कोमल पत्तों में,
फूलों को हँसते देखा।
खिच गयी वीर के उर में,
आशा की पतली रेखा ।।

उसको बल मिला हिमालय का,
जननी सेवा अनुरक्ति मिली।
वर मिला उसे प्रलयंकर का,
उसको चण्डी की शक्ति मिली ।।

सूरज का उसको तेज मिला,
नाहर समान वह गरज उठा।
पर्बत पर झंडा फहरा कर,
सावन-घन-सा वह तरज उठा॥

तलवार निकाली, चमकाई,
अम्बर में फेरी घूम-घूम।
फिर रखी म्यान में चम-चम-चम,
खर धार दुधारी चूम-चूम॥

जौहर

गगन के उस पार क्या,
पाताल के इस पार क्या है !
क्या क्षितिज के पार, जग,
जिस पर थमा आधार क्या है !

दीप तारों के जलाकर,
कौन नित करता दिवाली !
चाँद-सूरज घूम किसकी,
आरती करते निराली !

चाहता है सिन्धु किस पर,
जल चढ़ाकर मुक्त होना !
चाहता है मेघ किसके,
चरण को अविराम धोना !

तिमिर-पलकें खोलकर,
प्राची दिशा से झाँकती है।
माँग में सिन्दूर दे,
ऊषा किसे नित ताकती है !

गगन में सन्ध्या समय,
किसके सुयश का गान होता !
पक्षियों के राग में किस,
मधुर का मधु-दान होता !
पवन पंखा झल रहा है,
गीत कोयल गा रही है।

कौन है! किसमें निरन्तर,
जय विभूति समा रही है!
तूलिका से कौन रँग देता,
तितलियों के परों को!
कौन फूलों के वसन को,
कौन रवि शशि के करों को!

कौन निर्माता कहाँ है!
नाम क्या है! धाम क्या है!
आदि क्या निर्माण क्या है!
अन्त का परिणाम क्या है!

खोजता वन-वन तिमिर का,
ब्रह्म पर परदा लगाकर।
ढूँढ़ता है अन्ध मानव,
ज्योति अपने में छिपाकर॥

बावला उन्मत्त जग से,
पूछता अपना ठिकाना।
घूम अगणित बार आया,
आज तक जग को न जाना॥

सोचता जिससे वही है,
बोलता जिससे वही है।
देखने को बन्द आँखें,
खोलता जिससे वही है॥

आँख में है ज्योति बनकर,
साँस में है वायु बनकर।
देखता जग-निधन पल-पल,
प्राण में है आयु बनकर॥

शब्द में है अर्थ बनकर,
अर्थ में है शब्द बनकर।
जा रहे युग-कल्प उनमें,
जा रहा है अब्द बनकर॥

यदि मिला साकार तो वह,
अवध का अभिराम होगा।
हृदय उसका धाम होगा,
नाम उसका राम होगा॥

सृष्टि रचकर ज्योति दी है,
शशि वही, सविता वही है।
काव्य - रचना कर रहा है,
कवि वही, कविता वही है॥



डोला

अन्धकार दूर था
झाँक रहा सूर था
कमल डोलने लगे
कोष खोलने लगे
लाल गगन हो गया
मुर्ग मगन हो गया
रात की सभा उठी
मुस्करा प्रभा उठी

रात-तिमिर लापता
चाँद का न था पता
तुहिन-बिन्दु गत कहीं
छिप गये नखत कहीं

पवन मन्द बह चला
मधु मरन्द बह चला
अधखिले खिले कुसुम
डाल पर हिले कुसुम
भानु-कर उदित हुए
कंज खिल मुदित हुए
न्याय भी उचित हुए
कुमुद संकुचित हुए
भासमान बढ़ चला
तापमान बढ़ चला

रजत - रश्मियाँ उतर
खेलने लगीं बिखर
काँच में खिलीं कहीं
ज्योति में मिलीं कहीं
पंक में धँसी कहीं
फूल में हँसीं कहीं

जान गमन रात का
जान समय प्रात का
वीर सब उछल पड़े
महल से निकल पड़े

दिवस के विकास में
किरण के प्रकाश में
गोलियाँ दमक उठीं
बर्छियाँ चमक उठीं
सात - सौ सवारियाँ
तीव्रतर कटारियाँ
तेग तबर आरियाँ
चल पड़ीं दुधारियाँ
मखमली उहार थे
स्यूत रतन-तार थे
सूरमे कहार थे
जो ज्वलित अँगार थे
दुर्ग की तरी प्रबल
राज केसरी प्रबल
जयति बोलने लगे
शृंग डोलने लगे

॥ छाछट ॥

जय उमे, गणेश जय
रुद्र हर महेश जय
जय निशुंभ - मर्दनी
जय महिष-विमर्दनी

जय असुर-विदारिणी
जय त्रिशूल-धारिणी
देवि, पथ प्रशस्त कर
शत्रु-व्यूह, त्रस्त कर
जयति जयति बोलकर
बाहु-शक्ति तोलकर
हाँ, कहार चल पड़े
वीर-उर उछल पड़े
दुर्ग का महारथी
समरशूर - सारथी
बोल उठा ताव से
राजसी प्रभाव से
तुम अजर बढ़े चलो
तुम अमर बढ़े चलो
तुम निडर बढ़े चलो
आन पर चढ़े चलो

काँप रहा हाड़ हो
घोर विपिन झाड़ हो
सामने पहाड़ हो
सिंह की दहाड़ हो

शेषनाग हो अड़ा
क्यों न काल हो खड़ा

॥ सड़सठ ॥

पड़ रहे तुषार हों
झड़ रहे अँगार हो
पर न तुम रुको कभी
पर न तुम झुको कभी
नाग पर चले चलो
आग पर चले चलो
वेश की शपथ तुम्हें
देश की शपथ तुम्हें
मददगार राम है
लौटना हराम है
एक गति बनी रहे
एक मति बनी रहे
जोश भी न कम रहे
बाढ़ पर कदम रहे

क्यों न चले गोलियाँ
पर न रुके डोलियाँ
घूमते हुए चलो
झूमते हुए चलो

कौन कह रहा निबल
कौन कह रहा कि टल
झाड़ दो उसे अभी
गाड़ दो उसे अभी
लक्ष्य तो महान् है
एक इम्तहान है
पर न रंच भय करो
राह रक्तमय करो

विघ्न ठेलते चलो
हाँ, ढकेलते चलो
मस्त रेलते चलो
खेल खेलते चलो
राज सद्मिनी न है
आह पद्मिनी न है
एक देवता कहो
स्वर्ग का पता कहो

कौन चाहता - उसे
कौन डाहता उसे
दो उसे दुरा अभी
भोंक दो छुरा अभी

यही आन बान है
राजपूत - शान है
लक्ष्य जानकर चलो
वक्ष तानकर चलो
आसमान फट चले
मेदिनी उलट चले
आग की लपट चले
अंग-अंग कट चले
गर त्रिकूटधर गिरे
सूर छूटकर गिरे
चाँद फूटकर गिरे
व्योम टूटकर गिरे
तुम अजर बढ़े चलो
तुम अमर बढ़े चलो

तुम निडर बढ़े चलो
आन पर चढ़े चलो

अब न शत्रु दूर है
जो कि महाक्रूर है
अब न बोलते चलो
विष न घोलते चलो

भूत - से शिविर खड़े
अरि-समूह-शिर खड़े
तेग तबर लो छिपा
रंग जवर लो छिपा
क्षण दुधार मन्द हों
हाँ, उहार बन्द हों
ध्वनि न अनारी उठे
नाद कहारी उठे
दुर्ग से उतर गये
एक सिन्धु तर गये
अरि - शिविर समीप है
सामने महीप है
मौन वीर हो गये
मौन धीर हो गये
पर समीर हो गये
तुरत तीर हो गये
एक ही निदेश में
एक ही निमेष में
बोलियाँ सकुच गयीं
डोलियाँ पहुँच गयीं।

●

पद्मिनी की चिता

हवन होता था, चिता की,
आग धू-धू जल रही थी।
धूम की गति में मिली,
शाकल्य-सुरभि निकल रही थी॥
आँच से जलती दिशाएँ,
आँच की माला न कम थी।
पी रही थी आग घी, पर,
भूख की ज्वाला न कम थी॥

आज तक किसने अनल की,
भूख की ज्वाला बुझाई।
जो चला ज्वाला बुझाने,
बुझ गया पत भी गँवायी॥

लाल-लाल कराल जीभों,
को निकाल बढ़ा रही थीं।
अग्नि की हिलती शिखायें,
प्रलय पाठ पढ़ा रही थीं॥
आज चरु के साथ रावल,
वंश का संसार स्वाहा।
वीर होता मंत्र पढ़ते,
आँसुओं की धार स्वाहा॥
आज इस नरमेघ - मख में,
बाल-केलि, दुलार स्वाहा।

धधकती जलती चिता में
माँ-बहन के प्यार स्वाहा॥
इस हुताशन में कुसुम से,
गात स्वाहा, रूप स्वाहा।
लो प्रजा के साथ ही इस,
वीर-भू का भूप स्वाहा॥

पवन से मिल-मिल गले,
हँसती चिता में हास स्वाहा।
सत्य रक्षा के लिये जीवन,
मधुर मधुमास स्वाहा॥

इधर होता हवन करते,
उधर रूपवती खड़ी थी।
चौतरे पर गुनगुनाती,
आँसुओं की फुलझड़ी थी॥
आग मैं तुझमें समाऊँ,
अंक में ही मुक्ति पाऊँ।
आज अपनी लाज तेरी,
गोद में छिपकर बचाऊ॥
पा सकी न शरण कहीं पर,
माँ किसी ने दुख न देखा।
द्रौपदी के कृष्ण ने भी,
मलिन मेरा मुख न देखा॥
साथ सतियों के इसी से,
शरण में आई हुई हूँ।
माँ न तू मुँह फेरना, मैं,
दीन ठुकरायी हुई हूँ॥

माँ अगर आदेश दे तो,
रूप की होली जलाऊँ।
आग मैं तुझमें समाऊँ,
अंक में ही मुक्ति पाऊँ॥

आज आँचल में छिपा ले,
द्वार की इतनी हया कर।
पार जीवन के लगा दे,
आज तू इतनी दया कर॥
आज लपटों से लिपटकर,
मैं कहूँ अपनी कहानी।
और इन चिनगारियों में,
फूंक दूँ ऐसी जवानी॥
ज्वलित तेरे लोचनों से,
भी करुण आँसू बहाऊँ।
आग मैं तुझमें समाऊँ,
अंक में ही मुक्ति पाऊँ॥
मैं जलूँ, तो राख को तू,
दे उड़ा क्षिति से गगन पर।
पातकी रज छू न पावे,
नभ हिले मेरे निधन पर॥

और विधि से कह, किसी को,
रूप दे तो शक्ति भी दे।
पति मिले तो पति-चरण में,
भाव भी दे, भक्ति भी दे॥

माँ अगर कह दे नहीं तो,
देह से ज्वाला जगाऊँ।

आग मैं, तुझमें समाऊँ,
अंक में ही मुक्ति पाऊँ॥
गीत के अन्तिम चरण के,
गरम रव ललकार निकले।
जल उठी रानी अचानक,
अंग से अंगार निकले॥
पातिव्रत के तेज जागे,
जग उठीं चिनगारियाँ भी।
हा, जली तन के अनल से,
साथ की सब नारियाँ भी।
तब चिता ने भी बुलाया,
क्रूर लपटों को हिलाया।
और ज्वाला को सभय,
कम्पित रतन ने घी पिलाया॥

आग हाहाकार करती,
हरहराती चरु चबाती।
रूप - ज्वाला में पचाने,
को चली भू-नभ कँपाती॥

बार-बार किला हिला,
अम्बर हिला, भूडोल आया।
सिहर कर दबकीं दिशाएँ,
जय सती का बोल आया॥
देवताओं ने सजल नभ से,
सती को झाँक देखा।
भूलती उनको न उस दिन,
की, सती की रूप-रेखा॥

इधर स्वाहा शब्द निकला,
उधर वह कूदी अनल में।
जल उठी लपटें लटों में
बल उठी वह एक पल में।।
गात छन-छन रूप छन-छन,
एक छन तक छन-छनाकर।
उड़ गई मिलकर धुएँ में,
ज्योति जग में जगमगाकर।।

जल गई रानी रुई-सी,
स्मृति सुई-सी गड़ रही है।
पथिक, गंगा आँसुओं की,
विवश आज उमड़ रही है।।

लाज अबला की बचा ली,
आग, क्या तुझको बखानूँ।
छीन ले कोई अगर तुझसे,
उसे तो वीर जानूँ।।
हा, सती के बाद ज्वाला,
में धधकती नारियाँ थीं।
खेलती चिनगारियों से,
सुमन-सी सुकुमारियाँ थीं।।
आग में कूदीं अभागिन,
प्रथम विधवाएँ विचारी।
प्राणपति के सामने कूदी,
चिता में प्राण-प्यारी।।
देखती अपलक तनय को,
माँ, बरी बरती चिता में।

हा पिता के सामने, कूदी,
सुता जलती चिता में।।

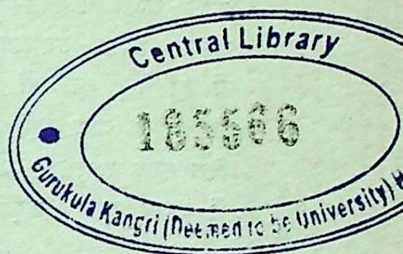
भाइयों को देखतीं कूदीं,
अनल में धीर - बहनें।
अग्नि - पथ से स्वर्ग पहुँची,
वीर गढ़ की वीर बहनें।।

दुधमुँही नव बालिकायें,
जो न कूद सकीं अनल में।
आग में फेंकी गई वे,
मातृ-कर से एक पल में।।
देख भैरव - दृश्य जड़ चेतन,
सभी लय भाँपते थे।
चीखती थी यामिनी, तारे
गगन पर काँपते थे।।
प्रलय के भय से दिशाएँ,
त्राहि-त्राहि पुकारती थीं।
इधर ललनाएँ चिता में,
मौत को ललकारती थीं।।
इस कठिन व्रत - साधना में,
लग सकी क्षण की न देरी।
रूप-यौवन की जगह पर,
राख की थी एक ढेरी।।

राख को सिर से लगाकर,
पाप-ताप शमन करो तुम।
देवियाँ इसमें छिपी हैं,
बार-बार नमन करो तुम।।

●

शिवाजी महाकाव्य



मैं करता अपना अभिवादन
मैं करता अपने को प्रणाम
मैं ही अरूप मैं ही अनाम
मैं रूप-रूप मैं नाम-नाम
मैं महाशून्य मैं ही विराट्
मुझमें सीमित ये दिग् दिगन्त
मैं ही अनादि मैं ही अनन्त
मुझमें प्रवाह का आदि अन्त

मैं बन्ध-मोक्ष मैं ही रहस्य
मैं प्रकृति पुरुष मैं ही विवेक
मैं मोह तिमिर शिव सत्य ज्ञान
मैं एक, मगर आकृति अनेक

मैं कर्त्ता कर्म अशेष शेष
मैं ही विवर्त्त मैं ही विशेष
अपने बाहर भीतर धक-धक
मैं धधक रहा हूँ अग्निवेश
मैं उदय अस्त गुरु लघु समस्त
मैं काल-हस्त मैं सृष्टि प्रलय
अपने को जनमा जनमाकर
अपने में ही होता हूँ लय
मैं - तुम के बीच वही हूँ मैं
अक्षर सब ओर सही हूँ मैं

वह रिक्त न जहाँ नहीं हूँ मैं
सच तो यह कहाँ नहीं हूँ मैं
मैं जड़-चेतन का मिलन-बिन्दु
बहते जीवन का मिलन-सिन्धु
काले-उजले चित्रित घन में
लुकता छिपता-सा अमृत बिन्दु
मैं हाँ में हूँ न नहीं में हूँ
मैं हाँ हूँ और नहीं भी हूँ
दिक् काल न मुझको बाँध सके
मैं बन्धन मुक्त कहीं भी हूँ

मैं गति हूँ चलता रहता हूँ
मैं तप हूँ जलता रहता हूँ
वन्दन-हित अपनी ओर सतत
जीवन हूँ ढलता रहता हूँ
मैं आदि शब्द नभ प्यारा हूँ
क्षिति अनल अनिल जल धारा हूँ
मैं अपना स्वयं सहारा हूँ
केवल मैं हूँ केवल मैं हूँ
शाश्वत विधि अभयंकर हूँ मैं
शिव शिव शिव शिव शंकर हूँ मैं
हर-हर-हर प्रलयंकर हूँ मैं
केवल मैं हूँ केवल मैं हूँ

●

शिवाजी मावलियों के बीच

अधिक न शेष रात थी
मधुर प्रभात खिल उठा
विहंग चहचहा उठे
कि पात-पात हिल उठा
निशा चली दिशा-दिशा
प्रकाश से दमक उठी
सुहासिनी उषा हँसी
वनस्थली चमक उठी

सुवास ले पवन चला
कली कपोल चूमते
हरिल्लता समूह बीच
व्यस्त मस्त झूमते

विमुग्ध मालती हिली
सुमन विरक्त झर गये
प्रसून हर सिंगार के
जमीन पर बिखर गये
प्रमोद साथ भासमान
खेलते हुए उठा
घनान्ध अन्धकार को
ढकेलते हुए उठा
सुवर्ण-सी किरण पड़ी
पहाड़ जगमगा उठा

वनस्पति-प्रपात झाड़
झाड़ जगमगा उठा
उदीयमान सूर्य को
सपुष्प अर्घ्यदान से
गिरीश को प्रसन्न कर
महिम्न - स्तोत्र ध्यान से

पवित्र वेदपाठ
अग्निहोत्र आदि कर्म से
शिव निवृत्त हो गये
स्वकीय प्रात धर्म से

पुनः रसाल वृक्ष
के तले जमाव हो गया
शिवा समर्थ मेल का
गजब प्रभाव हो गया
कि एक एक मावली
लिये कुटुम्ब साथ में
मुखर समक्ष जम गया
प्रखर कटार हाथ में
शिवा समर्थ रामदास
के पवित्र पाँव छू
खड़े हुए सरोष डग-
मगा उठी समग्र भू
उमंग से भरे शिवा
सरोष बोलने लगे
समाज के बँधे हुए
विमान खोलने लगे

जिओ सहस्र वर्ष तक
पहाड़ के तपस्वियों
बढ़ो प्रवाह की तरह
प्रजा लिये मनस्वियों

उठो दिनेश के समान
ज्योति का प्रसार हो
पुनः स्वदेश जाति में
स्वधर्म का प्रचार हो
उठो स्वराज्य के लिये
त्रिकूट तोड़ते हुए
मृगेन्द्र की दहाड़ से
दहाड़ जोड़ते हुए
सरोष सर्प के समान
साँस छोड़ते हुए
बढ़ो कठोर पंथ के
पहाड़ फोड़ते हुए
स्वदेश की पुकार है
कहीं रुको न साथियों
स्वधर्म की गुहार है
कहीं झुको न साथियों

अनाथ-दीन-हीन व्यक्ति
की कहीं न पूछ है
स्वदेश की झुकी हुयी
घुमावदार मूँछ है

शिकार से उदर पले
ढके शरीर पात से

उठे असह्य गंध
स्नानहीन क्षीण गात से
न रोग को दवा मिले
नगर न आस पास हो
समीप हरि-कथा न हो
न वैद्य हो न व्यास हो
यही मनुष्य जिन्दगी ?
यही मनुष्य गाँव है ?
मनुष्य-बुद्धि के विकास
का कहीं न नाँव है
रहो मनुष्य की तरह
मनुष्य का स्वभाव हो
जियो मनुष्य की तरह
मनुष्य से लगाव हो

जमीन अन्न वस्त्र हो
स्वतंत्र यज्ञ दान हो
प्रसन्न देश में प्रसन्न
साँझ हो विहान हो

गुलाम की न जिन्दगी
प्रकाश छोर छू सकी
दरिद्र की विपत्ति को
कहाँ सँभाल भू सकी !
उठो बहादुरो समस्त
देश खलबला उठे
अमित्र के प्रताप का
प्रदीप झलमला उठे

बढ़े चलो असंख्य तुम
अमित्र कौर छीन लो
जमीन अन्न वस्त्र अस्त्र
शस्त्र मौर छीन लो
मजाल क्या कि राह में
तुम्हें कृतान्त रोक दे
मजाल क्या कि काल भी
तुम्हें समक्ष टोक दे

अशक्त-रक्त पान में
कृतघ्न को न शर्म है
महीप में दया न है
न सत्य है न धर्म है

प्रजा हितार्थ जो कभी
सहे न ताप क्लेश को
क्षमा करो न उस मदान्ध
मन्दधी नरेश को
दवाग्नि की तरह उठो
चपेटते हुए बढ़ो
समस्त गढ़ स्व बाहु में
लपेटते हुए बढ़ो
किलाकिला स्वतंत्र हो
स्वतंत्र वर्ण वेश हो
स्वतंत्र जाति जाति हो
स्वतंत्र यह स्वदेश हो
सभी गरज उठे कुमार
आज नयम खुल गये

मिला सुपन्थ पन्थ
पन्थ के तमिस्त्र धुल गये

चलें जिधर जिधर उधर
उधर हमें पुकार लें
महीप छत्र छीन सिर
तुरन्त हम उतार लें

हमें न दूसरे पिशाच
की पनाह चाहिए
हमें शिवा समर्थ की
सदैव छाँह चाहिये
क्षुधा विकल कदन्न हित
कराहते हुए मरे
उदास हम विवस्त्र
वस्त्र चाहते हुए मरे
दवा बिना तड़प तड़प
मरे, विपत्ति से मरे
अनाथ हम विपन्न
सब उमंग साथ ले मरे
मगर किसी मनुष्य ने
दया न की सुधार की
हमें न एक छींट भी
मिली मनुष्य प्यार की

इसीलिये न कह रहे
कि आप देवता मिले
विपति गयी समग्र
भोग वस्तु के पता मिले

स्वराज्य के लिये खड़े
अजेय वन्य वीर हैं
निदेश दें चलें तुरन्त
मावली अधीर हैं
करें न देर देव, हम
प्रवाह की तरह बढ़ें
प्रचण्ड वेग से दवाग्नि
दाह की तरह बढ़ें

●

पितृ-भक्ति

सबेरा होने में थी देर
अभी थी रात दिशाओं में
उनींदे भूँक रहे थे श्वान
पहाड़ी धुँधले गाँवों में
खुले थे अभी न मन्दिर द्वार
न जागे अभी पुजारी थे
न गूँजी मुर्गों की आवाज
न चहके गगन-बिहारी थे

न मुल्लाओं की उठी अजान
न मस्जिद में कोलाहल था
न निकले अभी गोठ से बैल
न धुला निशा का काजल था

मगर प्रातः की मन्द बयार
चली मिलती वन बागों से
छमकती छूती करती प्यार
खेलती ताल तड़ागों से
नींद में झूमे तरु के पात
अलस सरसीरुह भी डोले
कोष के कारागृह में बन्द
न जाने क्या मधुकर बोले
शिवा के पिता शाह जी तभी
चले कुलदेव समर्चन को

सदल बल महाराष्ट्र की ओर
देखने कुल-परिवर्तन को
समय से पहले पहुँच महीप
द्वार पर वरद-भवानी के
धूल से धूमिल नंगे पाँव
पाँव पर थे महरानी के

उठे तो आँखों में जलबिन्दु
बिन्दु में भक्ति छलकती थी
हृदय में जगदम्बा की मूर्ति
मूर्ति में शान्ति झलकती थी

शाह जी अर्चन में थे लीन
दीन बन पास भवानी के
चढ़ाया सोने का शिवराज
रचाकर अंग जवानी के
मनौती मानी थी शिवराज
करेगा देश स्वतंत्र अगर
चढ़ाऊँगा चरणों पर देवि
शिवाकृति में सोना मनभर
अम्बिका के पूजन के बाद
शाह का मुख मण्डल दमका
भाल पर देवी चन्दन लाल
निकलते सूरज-सा चमका
मिला कुल देवी का वरदान
तुम्हारा पुत्र बड़ा होगा
वहाँ का होगा वह अधिराज
जहाँ उर तान खड़ा होगा

शाहजी पूर्ण काम हो चले
चलन से सबका मन हरते
शिवाजी तभी गिरे कर जोड़
पिता के चरणों पर डरते

मिलन से पिता-पुत्र के हृदय
पिघलकर आँखों में छलके
शिवा को लिये अंक में शाह
प्राण में जीवन सम झलके
शिवा जी बोले गद्गद कण्ठ
"पिता जी मुझको क्षमा करें
अगर भूला हूँ तो भगवान
आज से मन में रमा करें"
शाह ने कहा जिओ कुल दीप
तुम्हारी जय हो जय जय हो
पुत्र, तुम भारत के अभिमान
आर्य जन-पथ मंगलमय हो
तुम्हारी गति मति सब कुछ ठीक
एक ही बात खटकती है
तुम्हारी बीजापुर से सन्धि
न क्या अब भी हो सकती है!

शिवा बोले छू छूकर चरण
"शरण में हूँ मैं दूर न हूँ
आप का आज्ञाकारी किन्तु
वैरियों से मजबूर न हूँ

पिता जी गो द्विज-कुल का ह्रास
न मुझसे देखा सहा गया

पिता जी देख देश का नाश
न मुझसे बैठे रहा गया
पिता जी स्वतंत्रता के लिये
शोषकों से रण छेड़ा है
यही तो मेरा है अपराध
न कोई नया बखेड़ा है
पिता जी बीजापुर से सन्धि
हो गयी आप पधारे तो
चलें पूना सब होगा ठीक"
दरस से मुझको तारे तो
शाह की आँखें झरने लगीं
शिवा की पलकों में जल था
समस्या मुँह बाये थी खड़ी
आँसुओं में उसका हल था

पुत्र की श्रद्धा से अभिभूत
पिता पूना की ओर चले
पालकी पर थे शोभित शाह
शिवा जी पैदल ही मचले

शाह के पद-त्राण ले हाथ
चले शिव साथ कँहारों के
पितृ-चरणों में अविचल भक्ति
धन्य अभिमान जुझारों के
दूसरे दिन पूना छविमान
फूल फल चपल ध्वजाओं से
शाह-दर्शन-हित आये लोग
नगर से पुर से गाँवों से

सामने शिवा खड़े कर जोड़
शाह जी सिंहासन पर थे
सजीले दरबारी थे मुग्ध
चरण-सेवा में तत्पर थे
शिवा ने कहा, "देव यह राज
आप का और प्रजा जन का,
पिता जी मैं तो पहरेदार
आपके धन जन आसन का

यहीं अब राज धर्म से करें
मिला कर्नाटक को भी लें
वहाँ का अगर मोह भी लगे
न जाने का व्रत तो भी लें

क्योंकि यह अपनी भूमि स्वतंत्र
वहाँ आखिर बन्धन ही है
नीच के पास साधु का वास
नरक है आत्महनन ही है"
शाह ने कहा तुम्हारे भाव
खींचते हैं पर जाने दो
विकल बीजापुर से तत्काल
सन्धि की बात बताने दो
देश की स्वतंत्रता की नीति
प्रीति मन में भर देती है
न जाने की होती है चाह
मगर माया की खेती है
सभी के रक्षक हरि पर अभी
अहं का मोह न छूटा है

इसी से चंचल मन हूँ, क्योंकि
स्नेह का तार न टूटा है

शाहजी चले गये पथ-धूल
धरा से उठकर बैठ गयी
मगर ममता की आयी लहर
शिवा के मन में पैठ गयी

कुछ दिन बाद महाराष्ट्र पर धावा था
सिंह को पकड़ लेंगे मुगलों का दावा था
औरंगजेब के दिलेर एक मामा थे
आदमी नहीं थे बड़े चुस्त पायजामा थे
बड़े शानदार बड़े आन-बान वाले थे
रूप का पता न था कि गोरे थे कि काले थे
मगर मरहठों की जान लेने आये थे
चोरी से हमारा भगवान लेने आये थे

•

गौहरबानू और शिवाजी

वर्षा के दिन बीते, बीतीं
बरसाती काली रातें
बीत गये बादल के गर्जन
बीतीं बरसाती बातें
पर्वत के पथरीले पथ के
बहकर सूख गये पानी
जैसे क्रोध सोख लेता है
जीवन के रस वरदानी

शरत्ताप से भस्म हो गये
वर्षा के कृमि मतवाले
जैसे तेज सदाचारी का
अन्तः पाप जला डाले

सत्कर्मी के पुण्य कर्म की
तरह नखत नभ पर छाये
किसी देश के ज्योतिर्विद-सम
चपल नयन खंजन आये
अन्धकार धरती का पीकर
चाँद गगन पर जा चमका
जैसे सत्य चमक उठता है
वक्ष चीर मिथ्या-भ्रम का
दुग्ध फेन-सी मुग्ध चाँदनी
धरा धाम पर मुसकायी

मानो किसी विजेता की
सत्कीर्ति दिशाओं में छायी
खिले कमल सर-सर में तो
मधुकर आये गुन-गुन गाते
जैसे धर्मशील पुरुषों के
पास स्वयं सब सुख आते

सब मधु मधु पर कमल कंज को
चन्द्र प्रकाश खिला न सके
जैसे सिद्ध वशी के मन को
रमणी-रूप हिला न सके

शरत्काल की विजयादशमी
को शिव का दरबार लगा
चारों ओर जयिष्णु-शिवा का
होने जय-जयकार लगा
यथानियम सब बैठ गये तब
मधुर मंगलाचार हुआ
ध्वज-वन्दन हरि-अभिवन्दन
के बाद जयति जयकार हुआ
तभी मेघ-मण्डल में बिजली
सी अद्भुत नारी चमकी
उसकी मधुर मनोहर यौवन-
श्री से विजय सभा दमकी
गोरे भरे मनोहर मुख की
किरणें बड़ी रसीली थीं
तरुणी की आँखें गीली थीं
लेकिन बड़ी नशीली थीं

झीने पट में मांसल तन की
छवि न छिपायी जाती थी
उसमें वह मादकता थी
जो कहीं न भी कल पाती थी

बाढ़ जवानी की शरीर में
उमड़-उमड़ कर रह जाती
तरुण अंक में गेंद बनो तुम
मन की मस्ती बहकाती
भरे कठोर वक्ष की श्री
उन्मत्त बनाने वाली थी
मूक खड़े होने को वह विधि
गाज गिराने वाली थी
उस गोरी के रूप गोंद में
चिपक गयीं सबकी आँखें
फँसी लालसा के लासे में
मन के पंछी की पाँखें
दृष्टि शिवा की भी रमणी
पर पड़ी बड़ी सकुचाती-सी
उस अनजानी रूपवती से
आँख लड़ी झुझलाती-सी

तभी शिवाजी के समक्ष आ
आया सोनदेव बोला
उस सुहासिनी के परिचय का
भेद बड़े ढंग से खोला

श्रीमन्, जीत गया दुर्ग श्री
चरणों के प्रताप से ही

खड्ग उठाकर लड़े सामने
जो अरि वीर मरे वे ही
जैसी आज्ञा थी, मस्जिद की
एक ईंट भी छुयी नहीं
स्त्री कुरान की यवन-धर्म की
कहीं अवज्ञा हुयी नहीं
यह अहमद की पुत्र-वधू
श्री-पद-सेवा करने आई
प्रभो, इसे स्वीकार करें
यह सुधा, तृषा हरने आई
कैसी इसकी रूप चाँदनी
भरी सभा में छायी है
श्री-चरणों की शरण चाहती
कितनी भली जुन्हायी है

यह कह सैनिक मौन हो गया
विस्मित हुयी सभा सारी
शिव के उत्तर सुनने को
जनता में उत्सुकता भारी

खिन्न शिवा बोले बोली से
सब पर झर-झर फूल झरे
उत्तर की मनहर भाषा से
एक एक के नयन भरे
कहा, "धन्य यह रूप माधुरी
मन में घर करने वाली
किंचिद् दर्शन से विरक्त
का भी अन्तः हरने वाली

लेकिन दिव्य रूप के भीतर
झाँक रही है माँ मेरी
छवि रक्षा के लिये भवानी
सदा दे रही है फेरी
रोम-रोम में नव दुर्गा के
रूप निखरते जाते हैं
सती और सावित्री के
सौन्दर्य उभरते आते हैं

पावन है शशि-सी सुहासिनी
है, फिर भी पर-नारी है
इसकी छवि का केवल इसका
भर्त्ता ही अधिकारी है

यह सौन्दर्य जवानी का है
एक बुलबुला पानी का
असद् वस्तु से प्रेम जवानी
काम बड़ी नादानी का
अतः इसे अविलम्ब कनक
हीरा मोती के हारों से
नवल रेशमी वस्त्रों से
भूषित कर मणि उपहारों से
दिव्य पालकी पर बेटी की
तरह अभी घर पहुँचाओ
घर वालों में सुखी रहेगी
आहा इसे न कलपाओ
देवि कष्ट के लिये क्षमा दो
बहुत बड़ा अपराध हुआ

झुके खड़े सैनिक दरबारी
खुश होकर दो उन्हें दुआ

हिन्दू - धर्म नहीं कहता है
तुम्हें रोक कर बात करूँ
निर्बल को, नारी को दुख दे
वैरी को मैं मात करूँ

शिवा - वचन सुन गौहर की
आँखों में झलमल जल झलके
गोरे गदराये गालों पर
पलकों से मोती छलके
माखन से भी अधिक मुलायम
मिसरी से भी मधुर वचन
गद्‌गद नीचे मुख कर बोली
पुलकित तन, मन में कम्पन
"हूँ हुजूर के पाँवों में
मुझसे किसकी तकदीर बड़ी
दरस मिला तो क्या न मिल गया
बातें बनीं सभी बिगड़ी
आप जिस्म भर दिल ही दिल है
पाक दिलेर खुदा हाफिज
बदकारों के सर के ऊपर
खुद शमशेर खुदा हाफिज"

यह कहते ही मुग्ध वधू को
सबने अश्रुमुखी देखा
क्षण भर बाद कनक डोले में
उसे स्वतंत्र सुखी देखा

॥ सत्तानवे ॥

बड़े वेग से चली पालकी
श्वसुरालय की ओर मुड़ी
मानो कोई कल कबूतरी
कनक जाल के साथ उड़ी।

आरती

भूल गया मेरा पागल, तम की उलझी अलकों में
छिपी हुयी है मेरी दुनिया तेरी मृदु पलकों में

गिरता रहता है तरंग से जो
बहते नद का वह कूल हूँ मैं
मद मोह से जो भरमा ही करे
उसके मद-मोह का मूल हूँ मैं
वनमाली जिसे देखता भी नहीं
चित से उतरा वह फूल हूँ मैं
जिस राह से तेरे सनेही चलें
समझो उस राह की धूल हूँ मैं !

जिसमें नित नीरवता ही रहे
नभ का वह एक किनारा हूँ मैं
यह जीवन क्या है पता ही नहीं
फिर भी इस भूमि का प्यारा हूँ मैं
बुझती है न आग सदा गति से
सबकी एकता का सहारा हूँ मैं
रवि खेलता है जिसके घर में
उसके घर का एक तारा हूँ मैं।

नभ का सदैव शामियाना रहता है तना
फरस मही का है वसन्त की बहार है
सूर्य चन्द्रमा की जलती है ज्योति दोनों ओर
सुन्दर दिशाओं का हरेक खुला द्वार है।

झरने फुहारे बने तारे बने फूल-फूल
पंखा मलयाचल की झलती बयार है।
न्याय करने के लिये बैठते कहाँ हो तुम
कितना मनोहर तुम्हारा दरबार है।

घन की घटा को देख होती कामना है यही
बन के मयूर मैं तुम्हारी देख माया लूं
चरण सुधा के बदले है चाह होती यही
चातक समान जलबिन्दु बरसाया लूं।

देख सविता की छटा करता यही है मन
बसके सरोज में तुम्हारी देख छाया लूं
क्यों मैं वसुधा में तुम्हें घूम-घूम खोजूं कहीं
क्यों न निज प्रेम को तुम्हारी मान काया लूँ।
कू-कू कर कोकिला बताती फूली वाटिका में
तापस बताते तुम्हें मानस-भवन में
कहते सरोज सभी भोर के विभाकर में
तुमको बताते कामी कामिनी-नयन में।

कहते चकोर चन्द्रकर में बसे हो तुम
भँवरे बताते तुम्हें सुन्दर-सुमन में
नाथ बतलाओ अब घूम-घूम खोजूं कहाँ
माया का बिछा है जाल चौदहों भुवन में।

देते हो दिखायी मुझको न सपने में कभी
इससे दया की बनी रहती निराशा है
कवि हो निराले आले, कविता बनाते सदा
सविता तुम्हारी कविता की परिभाषा है।

धन की धरा की चाह मुझको न होती कभी
सेवक बनालो यही मेरी अभिलाषा है

कैसे किस भाँति नाथ कितना बखानूं तुम्हें
मेरे मौन भाव और मेरी मौन भाषा है।

चूसना अँगूठा मंजु वन के मुकुन्द बाल
याद हमको है वह पात बरगद का
शूकर के रद का अकेले मृदु ध्यान किया
ढूंढा डूब-डूब के पता न चला हद का।

मन में विनोद से किसी को ढूंढने के लिये
ध्यान जो लगा के बैठ गया कंज-पद का
देखा अपने में कुछ भूल अपने को गया
सुनने समोद लगा नाद अनहद का।

पावन पराग बनने के लिये भूतल से
उड़ता तुम्हारे पद-पंकज की ओर हूँ
चातक तुम्हारे प्रेम स्वाति-बिन्दु का हूँ बना
मधुप तुम्हारे पद-कंज का विभोर हूँ।

हो जो कुसुमाकर तो कोकिल विकल हूँ मैं
तुम जो रसीले घनश्याम हो तो मोर हूँ
हो तुम दिवाकर तो जान लो मुझे भी कंज
मोहन, तुम्हारे मुख चन्द्र का चकोर हूँ।

श्याम चरवाहे के सलोने पद पंकज को
मन में रमाना कहो कितना सरस है।

●

वसंत

महक रहा है मलयानिल क्यों
होती है क्यों कैसी कूक
बौरे-बौरे आमों का है
भाव और भाषा क्यों मूक
छुम छुम छननन रास मचाकर
बना रहा मतवाला कौन!
मुसुकाती जिससे कलिका है
है वह किस्मत वाला कौन!

बिना बनाये बन जाते वन
उन्हें बनाने वाला कौन!
कीचक के छिद्रों में बसकर
बीन बजाने वाला कौन!

फैलाकर माया मानस को
मुग्ध बनाने वाला कौन!
छिपे-छिपे मेरे आँगन में
हँसता आने वाला कौन!
अरे कौन! यह कुसुमाकर है
जिसकी है पहली मुसकान
अल्हड़ यौवन की नव छवि पर
वन-वन विह्वल पुलकित प्रान-

लेकर तेरे लिये माधुरी भावी यौवन का शृंगार
छिपे छिपे तेरे आँगन में आया है माधव सुकुमार।

●

समाधि

हो गये त्रिनेत्र के अचानक नयन बन्द
मन्द-मन्द तन का प्रकाश बढ़ने लगा
सीधा मेरु - दण्ड कमलासन सुदृढ़ बँधा
प्राण नाड़ियों से उतरने-चढ़ने लगा
कम्पहीन दीपक शिखा-सी ज्योति जल उठी
भभक-भभक ब्रह्म तेज कढ़ने लगा
खुल गयीं गाँठें सभी षट्चक्र पद्म खुले
ब्रह्म-ब्रह्म-ब्रह्म रोम-रोम पढ़ने लगा।

जग के विषय जग को दे नव द्वार रोक
प्राणापान सम किया अलख जगाने को
मुख ब्रह्म-रन्ध्र का खुला सुधा ढरक उठी
कुण्डली जगा ली आत्म-दीप जल जाने को
मान-अपमान-शीत-उष्ण का न ज्ञान रहा
ध्यान रहा ध्येय का न लगन लगाने को
नयन खुले तो ब्रह्म बन्द भी रहे तो ब्रह्म
रह गया ब्रह्म ब्रह्म बन जाने को।



ताण्डव

खुल गया तीसरा विलोचन त्रिलोचन का
नेत्र की प्रभा से भरी भूतनाथ की कुटी
रुद्र में अलख एक ज्योति भी चमक उठी
दीप्ति से दमक उठी शंकर की त्रिकुटी
शीघ्र अपने में रज-रज को समेट लिया
भेंट लिया नभ ले ली नागिन की लकुटी
कमर दिगम्बर की चाप-सी लरक उठी
ढरक उठी गंगा फरक उठी भृकुटी

डिम-डिम-डिम उठा गूँज डमरू का नाद
ताण्डव के उग्र भाव आने लगे हर में
नाचें देव-दानव त्रिदेव सविनोद नाचें
नभ में पयोद नाचें जल, जलधर में
नाचें यक्ष किन्नर पिशाच भूत प्रेत नाचें
नाचें निशाकर कर नाचें दिनकर में
हिल के सुमेर नाचें वरुण कुबेर नाचें
घेर नाचें गरुण सुमेर नाचें कर में।

•

युवक

चाहो तो फरेरा फहरा करे ख-मण्डल में
चाहो तो कुलावा मही-व्योम का मिला दो तुम
एक ही निमेष में खलों को बरबाद करो
राम का जमाना फिर विश्व पर ला दो तुम।

वार पर वार हो रहा है दम्भियों का किन्तु
एक ही लपेट में कलेजा दहला दो तुम
चाहो तो उखाड़ दो उभाड़ दो रसातल को
सिंह-सी दहाड़ से पहाड़ को हिला दो तुम।

क्रोध की तुम्हारी कहीं आग जो भड़क उठे
कालिका तड़प उठे भस्म हो मही-कुटी
विष से बुझी जो तलवार लहरा के उठें
देखो फिर विधि विधानता टुटी-फुटी।

धर के दबा दो तो महीधर चरक उठे
दर से गिरीश की दरक उठे त्रिकुटी
लरक उठे भूमि ख-मण्डल खरक उठे
युवक, तुम्हारी जो फरक उठे भृकुटी

जान को हथेली पर रख के पढ़ाया मंत्र
राणा का पढ़ाया वह मंत्र पढ़ते चलो
सूरमा शिवा का नाड़ियों में दौड़ता है खून
क्यों न फिर चौगुनी कला से कढ़ते चलो।

खून पर खून देख क्यों न खौल उठे खून
चाटक चला के चटके से चढ़ते चलो

साहस बढ़ा के भौंह सिंह-सी चढ़ा के चलो
युवक हमारे तुम आगे बढ़ते चलो।

कौन है उठाता आँख क्रोध से तुम्हारी ओर
अटक रहे हो क्यों, झपट उठ ताल दो
भर लो असीम तेज भीम-सा अकूत बल
तन से अधीरता सुभाव-सो निकाल दो।

चहल-पहल का तहलका मचा दो फिर
कण्ठ में वितुण्डमाल के वितुण्ड माल दो
बाज-सा हहा के हहरा के लहरा के उठो
युवक फरेरा फहरा के जान डाल दो।

मेरे शहीद तुम चिरंजीव !

केसरिया तन पर वक्ष तान
कूदे पावक में नव जवान
होली जल उठी जली सतियाँ
अब भी कण कण में विद्यमान
मेरे शहीद तुम चिरंजीव !

वह करामात थी वीरों में
मेवाड़ देश रणधीरों में
अड़ गये हिमालय के समान
बँध सकी न माँ जंजीरों में
मेरे शहीद तुम चिरंजीव !

बढ़ चले निडर हथियारों में
चढ़ चले निठुर तलवारों में
पीछे न एक डग फिरे कभी
चुन गये वीर दीवारों में
हे राय हकीकत चिरंजीव !

सह भूख-प्यास की ज्वालाएँ
पहनी कड़ियों की मालाएँ
कारा के रौरव से निकाल
ले गयीं तुझे सुर-बालाएँ
युग-युग यतीन्द्र तुम चिरंजीव !

अपने तन को बरबाद किया
उजड़े घर को आबाद किया

माता की जय का नाद किया
पर हम सबको आजाद किया
आजाद, भगतसिंह चिरंजीव!

रख दिया शीश तलवारों पर
थे, कूद पड़े अंगारों पर
थी एक लगन था एक ध्येय
सो गये रक्त फौहारों पर
मेरे गणेश तुम चिरंजीव!

जलियान-रक्त से निकल पड़े
प्रज्ज्वलित धधकते अंगारे
लो आग क्रान्ति की भड़क उठी
डूबे रवि शशि डूबे तारे
मेरे ऊधम सिंह चिरंजीव!

तुम पग-पग वीर चलो दिल्ली
जिसका जयहिन्द प्रयाण-गीत
उसके चरणों से लिपट गयी
हिन्दू-मुस्लिम की हारजीत
मेरे सुभाष तुम चिरंजीव!
मेरे शहीद तुम चिरंजीव!

•

सुभाष के सैनिक इम्फाल के मोर्चे पर

रँगों में खूँ उबलता है जोश कहता है
जिगर में आग उठती है हमारा रोष कहता है
उधर कौमी तिरंगे को सँभाले जोश कहता है
बढ़ो तूफान से वीरों चलो दिल्ली, चलो दिल्ली

हमारे जन्म की धरती हमारे कर्म की धरती
हमें रो-रो बुलाती है हमारे धर्म की धरती
बुलाती है हमें गंगा बुलाती घाघरा हमको
हमारे लाड़ले आओ बुलाता आगरा हमको

जवानी का तकाजा है रवानी का तकाजा है
तिरंगे के शहीदों की कहानी का तकाजा है
गुलामी की कड़ी तोड़ें तड़ातड़ हथकड़ी तोड़ें
लगाकर होड़ आँधी से जमीं से आसमाँ जोड़ें

उधर आगे पहाड़ों के अभी आसमाँ आता है
हमारा नव गुरुद्वारा अभी बंगाल आता है
वहाँ से दस कदम दिल्ली वहाँ से दीखती दिल्ली
चलो लें खून का बदला व्यथा से चीखती दिल्ली
जलाया जा रहा काबा लगी है आग काशी में
युगों से देखती रानी हमारी राह झाँसी में
शिवा की आन पर गरजो कुँवर बलिदान पर गरजो
बढ़ो दरते पहाड़ों को भगत की शान पर गरजो
बढ़ो जयहिन्द नारों से कलेजा थरथरा दें हम
किले पर तीन रंगों का फरेरा फर-फरा दें हम।

●

तुम्हारी याद आती है

पवन जब प्रात का चलता
कली कलहास करती है
निशा जब अरुण किरणों से
ऊषा की माँग भरती है।
विवाहित नववधू-सी जब
अरुणिमा मुस्कराती है
हृदय में पीर उठती है
तुम्हारी याद आती है।
थके जब विहग सो जाते
अँधेरी रात होती है
नियति निशि नयन के मोती
तृणों में जब पिरोती है।
धरा जब मौन हो जाती
विजनता जब सताती है
खुली आँखें न लगती हैं
तुम्हारी याद आती है।

गगन पर चाँद हँसता जब
धरणि पर रस बरसता है
शशी को चूमने को जब
जलधि का जी तरसता है।
तृषित वसुधा सुधाकर की
सुधा से जब नहाती है

विकल अन्तर तड़प उठता
तुम्हारी याद आती है।

नये किसलय निकलते जब
नये जब फूल खिलते हैं
मलय के मन्द बहने से
अलस तरुपात हिलते हैं।
कहीं छिपकर मधुर-स्वर से
पिकी जब गीत गाती है
हृदय में टीस उठती है
तुम्हारी याद आती है।
पवन के पंख पर उड़ती
घटाएँ जब उमड़ती हैं
घटा की श्यामता में जब
बकुलियाँ पुलक उड़ती हैं।
पड़ी घन अंक में बिजली
कभी जब चिहुँक जाती है
विकल आँखें बरसती हैं
तुम्हारी याद आती है।

विहग के साथ विहगी जब
प्रणय विह्वल विचरती है
मिलाकर पंख पंखों से
पुलक जब तान भरती है।
मिलित जब रागिनी उनकी
हवा में गूँज जाती है
कलेजा काँप उठता है
तुम्हारी याद आती है। ●

जय हनुमान

प्रगति पराक्रम और पौरुष के प्रचण्ड रूप
विद्या के, कला के मूर्त्त, मूर्त्तिमान् ब्रह्मचर्य
धमशील, न्यायशील, शौर्यशील, दौत्यकर्म मर्मशील
संस्कृत के संस्कृति के
ह्रस्व-दीर्घ झंकृति के, भीतिहीन हुंकृति के
दीप्तिमान् देवता
वायुपुत्र को प्रणाम
रामदूत को प्रणाम
आंजनेय को प्रणाम

जिसके स्मरण मात्र से विपन्न मानव को
मिलती महान् शक्ति, ज्ञानभक्ति जग विरक्ति
काल को निगलने का, विघ्न को कुचलने का, शत्रुव्यूह दलने का
अप्रमेय साहस उत्साह ओज धीरता
उस अजेय जेता के कपि कुल नेता के
वन्दनीय, वज्रसम चरणों में
शतबार बन्दन
सहस्र बार वन्दन
असंख्य बार वन्दन।

जिसने गरजते अलंघ्य जीव-जन्तुमय
भीषण तरंगों से समन्वित अगाध जल
हिन्द महासागर के गौरव को नष्ट किया

वारिधि को पारकर और उस पार जा
देववन्द्य राम की पदारविन्द योगिनी
पीड़िता वियोगिनी, आवृता निशाचरों से
श्वानों के बीच हरिणी सी भय-विह्वला
सीता के अर्चनीय चरणों के दर्शन से
पावन हो
सावन हो, ढर-ढर अश्रु के निपात से
असहनीय दुःखजन्य क्रोध से प्रमत्त हो
विराट् भीमकाय हो
मूर्त्तिमान् पावक प्रचण्डता निकाय हो
नागिन-सी पुच्छ के प्रचण्ड वह्नि-ज्वाल से
घूम-घूम फूँक दिया लंका को झूम-झूम
घास-फूस की तरह।
डंके की चोट पर गा-गा के राम कीर्त्ति
जल गया रावण का
स्वत्व-ज्ञान, आन-बान, स्वाभिमान
खोर-खोर बह गयी लंका की रत्न-राशि
उस अदम्य तेज-मूर्ति, बल-स्फूर्ति के निधान
जगद्वन्द्य हनूमान के बलिष्ठ चरणों में
नमस्कार
चरणों के रज-कण में
नमस्कार-नमस्कार।

केले के निकुंज में
मदान्ध गज के समान
गर्वशील दनुजों की
शौर्य-शक्ति रौंद कर

खोयी हुयी सीता का बताया पता राघव को
परम प्रसन्न हो कृतज्ञ हो ऋणी हो जिसे
दौड़ के लगाया कण्ठ
आँखें भर राम ने
गूँजा प्रवर्षण गिरि बार-बार घोष से
जय हनुमान, जय जय हनुमान के ।

लंका-दहन

वरिष्ठ कीश का वदन
अँगार लाल हो उठा
समग्र गात ही महा
महा कराल हो उठा
क्षणे-क्षणे शरीर-वृद्धि
से चकित त्रिलोक था
कहीं अनन्त हर्ष तो
कहीं अपार शोक था

विलोचन-स्फुलिंग नेत्र
द्वार पर चमक उठे
प्रदीप्त भाल पर विलोल
स्वेदकण दमक उठे

ज्वलल्ललाट पर अदम्य
तेज वर्तमान था
प्रचण्ड मान भंग जन्य
क्रोध वर्धमान था
ज्वलन्त पुच्छ बाहु व्योम
में उछालते हुए
अराति पर असह्य
अग्नि-दृष्टि डालते हुए
उठे कि दिक्-दिगन्त में
अवर्ण्य ज्योति छा गयी

कपीश के शरीर में
प्रभा स्वयं समा गयी
कराल आग पुच्छ की
बढ़ी अशान्त भाव से
अनन्त व्योम चूमने
चली घने घुमाव से

समग्र वस्तु राशि को
लपेटती हुयी बढ़ी
निशाचरी जमात को
चपेटती हुयी बढ़ी

बड़े-बड़े पराक्रमी
सभीत भागने लगे
इधर-उधर विपन्न
प्राण भीख माँगने लगे
कलत्र-पुत्र पौत्र बन्धु-
वर्ग का न ज्ञान था
विवस्त्र हो गये परन्तु
वस्त्र का न ध्यान था
ज्वलन्त पुच्छ लाल था
सरोष वक्त्र लाल था
कपीश-नेत्र लाल थे
समग्र लाल-लाल था
हवा बही विचित्र
दृश्य आग का कराल था
गहन दहन कराल रूप
बाग का कराल था

कराह जीव-जन्तु का
करुण मगर कराल था
जहाँ निहारिये वहीं
कराल ही कराल था

अरे कपीश पुच्छ का
कृशानु है कि काल है
प्रचण्ड बाड़वाग्नि है कि
रुद्र नेत्र ज्वाल है
विनाश का प्रतीक है
न सूक्ष्म है न स्थूल है
प्रदीप्त काल अग्नि है
त्रिनेत्र का त्रिशूल है
कपीश पुच्छ आग है
नहीं, असह्य नर्क है
दवाग्नि है मगर सदा
स्वपक्ष में सतर्क है
किला जला नगर जला कि
क्या जला कहाँ जला
बड़ा गरम धुआँ उठा
यहाँ जला, वहाँ जला

जिधर - जिधर चपेटती
उधर-उधर विनाश है
अनन्त सूर्य-राशि-पुंज
का प्रखर प्रकाश है

गवाक्ष द्वार जल गिरे
प्रदीप्त धाम-धाम से

अवर्णनीय स्वर्ण के
महल गिरे धड़ाम से
गृह-ज्वलन निनाद
गेह-पात-रव अखण्ड था
प्रकोप वीतिहोत्र का
प्रचण्डतर प्रचण्ड था
सभा-भवन जले धधक
धधक अटारियाँ जलीं
स्वकन्त को पुकारतीं
अधीर नारियाँ जलीं
न रामदूत है कपीश
अग्नि मूर्त्तिमान् है
अरे कृतान्त का अवर्ज्य
दण्ड दीप्तिमान् है

लपट लपट लपट गले
गली-गली निहाल थी
इधर धधक उठी उधर
तड़प तड़प कराल थी

पिघल-पिघल सुवर्ण
रत्न खोर-खोर बह गये
निशाचरी प्रयत्न के
अभेद्य दुर्ग ढह गये
निशाचरेश दृश्य देख
मन्द था, अवाक् था
उदग्र गर्व के समक्ष
ढेर-ढेर खाक था

जहाँ खड़ा रहा वहीं
खड़ा रहा न हिल सका
विपत्ति के समय उसे
कहीं न मित्र मिल सका
उधर वलिष्ठ यातुधान
रक्षिता पुरी जला
ध्वजा जला सुवर्ण की
अनीति आसुरी जला

कपीश पुच्छ वह्नि शान्ति
के लिये तपाक से
त्रिकूट कूट से समुद्र
में गिरे छपाक से

प्रचण्ड भा समेत
भासमान् सिन्धु में गिरा
कि ज्योतिमय समग्र
आसमान सिन्धु में गिरा।

•

हिमालय

यह तुंग हिमालय किसका है!
उत्तुंग हिमालय किसका है!
हिमगिरि की चट्टानें गरजीं
जिसमें पौरुष है उसका है
पत्थर से ईटों का जवाब
जो दे के गरजे शान रखे
लोहे की दृढ़ता से लोहा
जो ले के माँ का मान रखे

जिसकी भुजंगमी बाँहों में
फुफकार भरी है शक्तिभरी
जिसकी गज भर की छाती में
जनता की है अनुरक्ति भरी

जो बैरी मस्तक काट-काट
अम्बार लगाये, उसका है
फन काढ़े साँपों के सर पर
जो राह बनाये, उसका है
जो सीने पर गोली खाये
पर कदम-कदम बढ़ता जाये
जो महामृत्यु को भी ढकेल
अरि-मस्तक पर चढ़ता जाये
जो मरकर भी जीने वाला
जनता हित विष पीने वाला

संगर में प्रलयंकर बनकर
जो मुण्डमाल सीने वाला
बर्बर बैरी के घर-घर में
जो आग लगाये, उसका है
जो वज्रनाद के भी ऊपर
आवाज लगाये, उसका है

इनसे-उनसे दबने वाले
यह नहीं दबैलों का गिरीन्द्र
यह सिंहों की स्वच्छन्द भूमि
दुर्द्धर्ष अड़ैलों का गिरीन्द्र

जो नहीं शत्रु को जान सका
जो नहीं मित्र पहचान सका
उससे गिरिराज घृणा करता
जो वैरी को दहला न सका
जो पंचमांगियों के मस्तक
निर्भीक उड़ाये, उसका है
जो पाँवों की गम्भीर धमक से
धरा हिलाये, उसका है
जिस धरती का रस पिये जिए
उस धरती को बदनाम करे
बाहर भारत का भक्त बने
भीतर कैंची का काम करे
गद्दारों के सीनों में जो
संगीन घुसाये, उसका है
जो अपनी माँ के स्वाभिमान पर
प्राण गँवाये, उसका है

यह तुंग हिमालय किसका है
उत्तुंग हिमालय किसका है
हिमगिरि की चट्टानें गरजीं
जिसमें पौरुष है, उसका है।



इन साँसों का कुछ ठीक नहीं

आये न आये ठिकाना क्या
जाये न जाये बहाना क्या
प्राणों की इन सहचरियों से
मिलना क्या नेह लगाना क्या
जीवन पतंग को खींच रहा
साँसों के धागों से कोई
कब टूटे खींचा-तानी में
यह नहीं जानता रे कोई

दो दिन का तेरा मेरा है
साँसों तक तन में डेरा है
जब साँस रुकी तब कौन कहाँ
यह चिड़िया रैन बसेरा है

यह महल अटारी शौक शान
यह मान-प्रतिष्ठा स्वाभिमान
जब साँस गयी तब माटी सब
पोथी पुरान कलमा कुरान
बचपन तो खेल खिलौना है
यौवन दूल्हन का गौना है
असहाय बुढ़ौती काँप रही
साँसों का ढंग घिनौना है

सांसों की लघु पतवारों से
कब तक यह नाव चलेगी रे
माझी के तारक चरण गहो
चुपके वह कभी छलेगी रे
इन सासों का कुछ ठीक नहीं।

मैं तुम्हें पहचानता हूँ

मैं तुम्हें पहचानता हूँ
तुम भले बोलो न बोलो
जानता सब भेद मन के
द्वार तुम खोलो न खोलो
मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

तुम मनुष्य न देवता हो
यक्ष तुम किन्नर नहीं हो
तुम न क्षिति अप तेज मारुत
दिक् नहीं अम्बर नहीं हो
मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

तुम मदारी नट नहीं हो
निज प्रदर्शन से अलग हो
तुम न मन हो बुद्धि हो प्रिय
तुम न प्राण मगर सजग हो
मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

बोलती मुद्रा तुम्हारी
तुम सनातन हो सही हो
ढूँढ़ता जिसको युगों से
तत्त्व चिन्मय तुम वही हो।
मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

●

क्या कहूँ मैं, क्या करूँ मैं ?

मैं न आना चाहता था
पर यहाँ आना पड़ा है
और सबके सामने ही
नाचना-गाना पड़ा है।
इस विवशता की व्यथा
कब तक सहूँगा राम जानें
पाप उतने ही बढ़े, मैंने
किये जितने बहाने।
पंक में आकर धँसा
जितना धँसा उतना हँसा मैं
पर न जान सका कँटीले
तार में कैसे फँसा मैं।
शान्ति दे भ्रम दूर कर दे
यह किसी में बल नहीं है
बन्द कर दो पाठ करना
पोथियों में हल नहीं है।
क्या कहूँ मैं, क्या करूँ मैं।



मैं तुम्हें कितना पुकारूँ

बंद कर गृह-द्वार भीतर जन्म से ही मौन बैठे,
जिस गुहा में तुम बिराजे उस गुहा में कौन पैठे।
मानता हूँ वन्दना में आर्त्त का क्रन्दन नहीं है,
अर्चना के थाल में अक्षत नहीं, चन्दन नहीं है।
पर तुम्हीं बोलो चिरंतन, क्या तुम्हारा मैं नहीं हूँ,
यह रहस्य कहाँ छिपा अब क्या तुम्हीं में लय नहीं हूँ।
मैं नहीं तो तुम नहीं हो, तुम नहीं तो मैं नहीं हूँ,
द्वार तो खोलो निरंजन, तुम जहाँ हो मैं वहीं हूँ।
एक मैं तुम तो भला फिर आरती किसका उतारूँ ?
सामने आता नहीं है,

कौन घर में बोलता क्यों सामने आता नहीं है,
हर अधर पर मुस्कराता पर कहीं जाता नहीं है।
गूँजता वातावरण में साफ कुछ गाता नहीं है,
झाँकता है खिड़कियों से पर नजर आता नहीं है
मैं हजारों नाम से जिसको पुकारूँ वह न बोले
और अपना भेद हरदम साथ रहकर भी न खोले
तो भला यह जिन्दगी किसके सहारे पर चलेगी
आज तक जलती रही क्या और भी आगे जलेगी ?
किस तरह तत्सम बनूं यह बात बतलाता नहीं है।
सामने आता नहीं है।



बटोही

तेरी कुछ आदत गन्दी है
भाई बोल रे बटोही अब जायेगा कहाँ।
कब फिर अपने घर में दीप जलायेगा यहाँ।
तेरी कुछ आदत गन्दी है।
चमड़े के घर में बन्दी है
अब तक भटका अन्धेरे में
इस घेरे उस घेरे में
आँखें खोल रे बटोही—अब जायेगा कहाँ ?

सभी दिशाओं में ठग बैठे
कुछ बाहर कुछ भीतर बैठे
कुछ तो हँस-हँसकर बोलेंगे
शेष रहेंगे ऐंठे-ऐंठे
मन को तोल रे बटोही—अब जायेगा कहाँ ?

अब की बार सजग रहना है
सबके साथ नहीं बहना है
चूक गया तो पछतायेगा
लौट इसी घर में आयेगा
कुछ हिल डोल रे बटोही—अब जायेगा कहाँ ?

●

उत्तर कहीं मिलता नहीं है

मैं तुम्हें जीने न दूँगा
मैं तुम्हें मरने न दूँगा
जो किया सो कर दिया
अब और कुछ करने न दूँगा
दृश्य है द्रष्टा नहीं है
प्रश्न यह तनकर खड़ा है
नियति का कोई नियन्ता
तर्क यह सबसे बड़ा है
मैं बनाता शव तुम्हें तो
शिव बनाकर पूजता भी
तुम रहो अव्यक्त पर
जय घोष बनकर गूँजता भी
ढूँढ़ता हूँ प्रश्न का उत्तर
कहीं मिलता नहीं है
यदि कहीं उत्तर मिला तो
मन-कुसुम खिलता नहीं है

●

आत्म-निवेदन

मैं वीरकाव्य का अन्धड़ हूँ
तूफान ववण्डर हूँ
लेकिन अपनी मर्यादा की
सीमा के अन्दर हूँ।
मैं काँटों के घर में फूलों का
हार बनाता हूँ
साहित्य-देवता के चरणों पर
उसे चढ़ाता हूँ।
मैं किसी वाद के साथ
हवा में बहका उड़ा नहीं
मैं संघर्षों के बीच पला
पर घिसकर मुड़ा नहीं।
मैं आर्य-धर्म का वीर पुजारी
अलग अकेला हूँ
चाहे कोई कुछ कहे
मगर सबके मुँह मेला हूँ।
सर-सरिताओं से प्यार मुझे, मैं अगम समन्दर हूँ।

मैं मन्दिर-मन्दिर ढूँढ़ चुका
पर शाश्वत मिला नहीं
मेरे मानस का कुसुम
आज तक खुलकर खिला नहीं।

कविता ने मुझको बाँध लिया
रंगीन भुजाओं में
रस सराबोर हो गया अहं रख
माँ के पावों में।
तबसे छन्दों में अपनी ही
तसवीर बनाता हूँ
इतिहासों में सोये वीरों को
पुनः जगाता हूँ।

संस्कृत जन को वश में कर लेता मोहक मन्तर हूँ।
लेकिन अपनी मर्यादा की सीमा के अन्दर हूँ॥

भीतर मन्दिर के द्वार बन्द

भीतर मन्दिर का द्वार बन्द
कैसे साष्टांग करूँ
झाँकी प्रकाश की मिली नहीं
झूठे क्यों स्वाँग भरूँ।
जीवन बीता तुकबन्दी में
चित विषय-वासना में
रँगरलियों में दिन कटे
न मन उमड़ा उपासना में।
मैंने कविताएँ बेंच-बेंच
जो महल उठाया है
उसमें बन्दी हैं प्राण
तड़पती बेसुध काया है।
हैं नहीं इन्द्रियाँ तृप्त
भोग से अभी न ऊबी हैं
यौवन निचोड़ पी गयीं
मगर फिर मद में डूबी हैं।
किस तरह देव के चरणों पर श्रद्धा के फूल धरूँ।

धारा में बहते पत्ते सा
आ लगा किनारे हूँ
मुझमें मेरा कुछ नहीं
सदा से दैव सहारे हूँ।

मद, मोह, लोभ से बँधा हुआ
तृष्णा के घेरे में
अपने घर का ही रतन
ढूँढ़ता निपट अँधेरे में।
चलते-चलते थक गये पाँव
पर काशी मिली नहीं
अविनाशी की पावन प्रतिमा
मेरी पुकार से हिली नहीं।
नि:सीम गरजता सागर है कैसे असहाय तरूँ।

●

लोरी

नाचो नाचो रे कन्हैया।
नाचो नाचो रे कन्हैया मैं बलैया लूंगी ना।
रे तुम थिरक थिरक नाचो रे तुम थैया थैया नाचो
तुमको दूध पीने के लिये मैं गैया लूंगी ना।

जन के कण्ठ-कण्ठ में नाचो, जन के नयन-नयन में नाचो
मेरे तन मन धन पर नाचो, गोकुल वृन्दावन में नाचो
फर फर फर्र उड़ाने के लिये चिरैया दूंगी ना।

ऊपर चन्दा मामा नाचें नीचे तुम आँगन में नाचो
तारे और तरैया नाँचें, उनकी ज्योति किरन में नाचो
यमुना में तिरने के लिये मैं नैया दूंगी ना।

ऐसा ठुमुक-ठुमुक तुम नाचो जिससे मोह कुहा फट जाये
जिससे जग-जीवन जग जाये जिससे भव बन्धन कट जाये
राधे की तरह तार की कुल्हैया दूंगी ना।

आज सरजू नहाने को जी चाहता

तैरना जानता हूँ न रोको मुझे
माँ बड़ा हो गया हूँ न टोको मुझे
आज पानी थहाने को जी चाहता।

बहुत पास सरजू नहीं दूर है
भगी जा रही वह कहीं दूर है
जरा उसको मनाने को जी चाहता।

चमकती छमकती हुयी धार में
ठमकती झमकती हुयी धार में
साँझ दीआ जलाने को जी चाहता।

चाँद सूरज सितारे उतरते जहाँ
उतरकर लहर में लहरते वहाँ
फूल-माला चढ़ाने को जी चाहता।

हठ भरे राम के उस मधुर बोल को
मधुर याचना बात अनमोल को
मौन मन में रभाने को जी चाहता।

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट–
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य







हिन्दी स

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

ी साहित्य सम्मे



सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग